THE BOOK WAS DRENCHED

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY

OU_186145

UNIVERSAL LIBRARY

गद्य चन्द्रिका

[प्रवेशिका परीक्षा के लिए स्वीकृत]

संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण

सम्पादक

पं० बुद्धिनाथ शर्मा, शास्त्री

सञ्जौन हाई स्कूल, आगरा

सर्वोदय साहित्य मन्दिर

हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रकाशक

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ, प्रयाग

१६४६

प्रकाशक : प्रयाग-महिला-विद्यापीठ, प्रयाग

चतुर्थ संस्करण : मूल्य १=)

मुद्रक—अग्रवाल प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

लेख ... पृष्ठ

१—दीनों पर प्रेम—श्री वियोगी हरि ... १

२—बादल—पं० गोकुलचन्द्र शर्मा एम० ए० ... ६

३—सम्भाषण में शिष्टाचार—पं० कामता प्रसाद गुरु ६

४—अफ्रीका-निवासियों का रहन-सहन—पं० सद्गुरु शरण अवस्थी १६

५—क्रोध —पं० रामचन्द्र शुक्ल २२

६—मिताचरण—पं० बालकृष्ण भट्ट ... २८

७—दो-दो बातें—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ... ३२

८—साहस और अध्यवसाय—पं० रामचन्द्र शुक्ल ... ३६

९—रामायण—पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ... ४०

१०—लव-कुश का राम-दर्शन—लाला सीताराम बी० ए० ४६

११—पैसे की शिकायत—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ... ५०

१२—महारानी पद्मिनी—पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न ५५

१३—सदाचार—संकलित ६३

१४—सभानेत्री का भाषण—श्रीमती सुभद्रा कुमारी... चौहान ६६

१५—श्री गोस्वामी तुलसी दास—बाबू श्याम सुन्दर दास ७४

१६—भामाशाह की स्वामि भक्ति—बाबू राधाकृष्ण दास ८२

लेख	पृष्ठ
१७—आदर्श बदला—श्री सुदर्शन ...	८९
१८—लड़कियों के खेल—श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर ...	९६
१९—सागर और मेघ—श्री राय कृष्णदास ...	१०२
२०—गृह प्रबन्ध में मितव्ययता—श्रीमती प्रभावती शुक्ल	१०७
२१—मध्य योरप का प्राकृतिक सौंदर्य—श्रीराम नाथ सुमन	१११
२२—जीवन संग्राम और छोटे प्राणी—श्री लज्जाशंकर झा, एम० ए० बी० टी०	११७
२३—सत्कार्य की महत्ता—श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	१२५
२४—पम्पियाई की अद्भुत सड़क—श्री बनमाली प्रसाद शुक्ल	१३०

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक प्रयाग महिला विद्यापीठ, इलाहाबाद, की प्रवेशिका परीक्षा में प्रविष्ट होनेवाली बालिकाओं के लिए संकलित की गई है। इस परीक्षा की बालिकाओं की योग्यता का ध्यान रखते हुये हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखकों के लेखों का संग्रह उचित रीति से किया गया है। प्रत्येक पाठ के पूर्व प्रत्येक लेखक का परिचय भी दिया गया है।

इस पुस्तक में पाठों का क्रम भी योग्यता को ध्यान में रखकर ही किया है। अतः क्रमशः जन्मकाल का विभाजन नहीं हो सका। इस क्रम के रखने का मुख्य उद्देश्य बाल्यकाल से ही हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न करना है। इस प्रकार शनैः शनैः ऐसी पुस्तकों के पढ़ने से मानसिक विचार शक्ति का प्रादुर्भाव हो सकेगा। प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्न भी योग्यता अनुसार रक्खे गये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के संकलन का अधिक श्रेय बाबू रामेश्वर प्रसाद जी बी० ए०, रजिस्ट्रार, प्रयाग महिला विद्यापीठ, इलाहाबाद को ही है; क्योंकि पुस्तक के निर्माण करने के लिये आपने मुझे कई बार उत्साहित किया। अतः मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ और साथ ही साथ उन लेखक महोदयों का भी आभारी हूँ जिनके लेखों का संग्रह प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है।

आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक बालिकाओं के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। तभी मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

बसन्त पंचमी
सम्बत् २००१

बुद्धिनाथ शर्मा

गद्य-चन्द्रिका

१–दीनों पर प्रेम

[ले०–श्री वियोगी हरि]

[इनका जन्म सं० १९५३ है। ये हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध लेखक और भावुक कवि हैं। इन्हें ब्रजभाषा से अधिक प्रेम है। ये प्रायः गद्य-काव्य भी लिखा करते हैं। इन्होंने गरीबों और अछूतों में अपने को मिलाने का सराहनीय प्रयत्न किया है। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें 'वीर सतसई' अधिक प्रसिद्ध है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से इन्हें 'वीर सतसई' पर १२ सौ रुपये का मंगला प्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है। ये आजकल दिल्ली में 'हरिजन' पत्र का सम्पादन करते हैं।]

हम नाम के ही आस्तिक हैं। हर बात में ईश्वर का तिरस्कार करके ही हमने 'आस्तिक' की ऊँची उपाधि पाई है। ईश्वर का एक नाम 'दीनबन्धु' है। यदि हम वास्तव में आस्तिक हैं, ईश्वर-भक्त हैं तो हमारा यह पहला धर्म है कि दीनों को प्रेम से गले लगायें, उनकी सेवा करें, उनकी सहायता करें, उनकी शुश्रूषा करें। तभी न दीनबन्धु ईश्वर हम पर प्रसन्न होगा ? पर ऐसा हम कब करते हैं ? हम तो दीन दुर्बलों को ठुकरा-ठुकरा कर ही आस्तिक या दीनबन्धु भगवान के भक्त आज बने बैठे हैं। दीनबन्धु की ओट में हम दीनों का खासा शिकार खेल रहे हैं। कैसे अद्वितीय आस्तिक हैं हम ! न-जाने क्या समझ कर हम अपने कल्पित ईश्वर का नाम दीनबन्धु रखते हैं, क्यों इस रद्दी

नाम से उस लक्ष्मी-कान्त का स्मरण करते हैं।

दीननि देखि घिनात जे, नहिं दीनन सों काम।
कहा जानि ते लेत हैं, दीनबन्धु कौ नाम॥

हमने यह सुना अवश्य है कि त्रिलोकेश्वर श्रीकृष्ण की मित्रता और प्रीति सुदामा नाम के एक दीन-दुर्बल ब्राह्मण से थी। यह भी सुना है कि भगवान यदुराज ने महाराज दुर्योधन का अतुल आतिथ्य अस्वीकार कर बड़े प्रेम से गरीब विदुर के यहाँ साग-भाजी का भोग लगाया था। पर यह बातें चित्त पर कुछ बैठती नहीं हैं। रहा हो कभी ईश्वर का दीनबन्धु नाम, पुरानी सनातनी बात है, कौन काटे? पर हमारा भगवान, दीनों का भगवान नहीं है। हरे हरे! वह उन घिनौनी कुटियों में रहने जायगा! वह रत्न-जटित स्वर्ण-सिंहासन पर विराजने वाला ईश्वर उन भुक्खड़ कंगलों के फटे-कटे कम्बलों पर बैठने जायगा! वह मालपुआ और मोहनभोग का भोग लगाने वाला भगवान उन भिखारियों की रूखी-सूखी रोटी खाने जायगा! कभी नहीं हो सकता। हम अपने बनाए हुए विशाल राज-मंदिरों में उन दीन-दुर्बलों को आने भी न देंगे। उन पतितों की छाया तक हम अपने खरीदे हुए खास ईश्वर पर न पड़ने देंगे। दीन-दुर्बल भी कभी ईश्वर-भक्त होते सुने गये हैं? ठहरो, ठहरो, यह कौन गा रहा है? ठहरो ज़रा सुनो। वाह! तब यह खूब रही!

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में॥

तो क्या हमारे श्री लक्ष्मीनारायणजी "दरिद्र-नारायण" हैं?

इस फ़कीर को सदा से तो यही मालूम हो रहा है। तो क्या हम भ्रम में थे ? अच्छा अमीरों के शाही महलों में वह पैर भी नहीं रखता।

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में !

हज़रत खड़े भी कहाँ होने गये।

बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था,
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में।

तो क्या उस दीनबन्धु को अब यही मंजूर है कि हम अमीर लोग धन-दौलत को लात मार कर उसकी खोज में दीन-हीनों की झोंपड़ियों की खाक छानते फिरें ?

× × ×

दीन-दुर्बलों को अपने असह्य अत्याचारों की चक्की में पीसने वाला धनी परमात्मा के चरणों तक कैसे पहुँच सकता है ! धनान्ध को स्वर्ग का द्वार दीखेगा ही नहीं। महात्मा ईसा का यह वचन क्या असत्य है—

'यदि तू सिद्ध पुरुष होना चाहता है, तो, जा, जो कुछ धन दौलत तेरे पास हो, वह सब बेचकर कंगालों को दे दे। तुझे अपना खजाना स्वर्ग में सुरक्षित रखा मिलेगा। तब आ और मेरा अनुयायी हो जा। मैं तुझ से सच कहता हूँ, कि धनवान के स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद में से निकल जाना कहीं आसान है"। सहजोबाई भी यही बात कह रही हैं :—

बड़ा न जानै पाइहै साहिब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागिहै 'सहजो' मोटी मार॥

किसानों और मज़दूरों की टूटी-फूटी झोपड़ियों में प्यारा

गोपाल वंशी बजाता मिलेगा। वहाँ जाओ और उसकी मोहिनी छबि निरखो ! जेठ-बैसाख की कड़ी धूप में मज़दूर के पसीने की टपकती हुई बूँदों में उस प्यारे राम को देखो। दीन-दुर्बलों की निराशा-भरी आँखों में उस प्यारे कृष्ण को देखो। किसी धूल भरे हीरे की कनी में उस सिरजनहार को देखो। जाओ, पतित पद्-दलित अछूत की छाया में उस लीला-बिहारी को देखो।

× × ×

तुम न जाने उसे कहाँ खोज रहे हो ! अरे भाई, यहाँ वह कहाँ मिलेगा ? इन मन्दिरों में वह राम न मिलेगा। इन मसजिदों में अल्लाह का दीदार मुश्किल है। इन गिरजों में कहाँ परमात्मा का बास है ? इन तीर्थों में वह मालिक रमने का नहीं। गाने-बजाने से भी वह रीझने का नहीं। अरे, इन सब चटक-मटक में वह कहाँ ? वह तो दुखियों की आह में मिलेगा। ग़रीबों की भूख में मिलेगा। दीनों के दुःख में मिलेगा। वहाँ तुम खोजने जाते नहीं, यहाँ व्यर्थ फिरते हो।

दीनबन्धु का निवास-स्थान दीन-हृदय है। दीन-हृदय ही मन्दिर है; दीन-हृदय ही मसजिद है, दीन-हृदय ही गिरजा है। दीन-दुर्बल का दिल दुखाना भगवान का मन्दिर ढहाना है। दीन को सताना सबसे भारी धर्म-विद्रोह है। दीन की आह समस्त धर्म-कर्मों को भस्मसात् कर देनेवाली है। सन्तवर मलूकदास ने कहा है :—

दुखिया जनि कोइ दूखिये, दुखिये अति दुख होय।
दुखिया रोइ पुकारि है, सब गुड़ माटी होय ॥

दीनों को सता कर, उनकी आह से कौन मूर्ख अपने स्वर्गीय जीवन को नारकीय बनाना चाहेगा, कौन ईश्वर-विद्रोह करने

का दुस्साहस करेगा। ग़रीब की आह भला कभी निष्फल जा सकती है :—

'तुलसी हाय ग़रीब की, कबहुँ न निष्फल जाय।
मरे बैल के चाम सों, लोह भसम ह्वै जाय॥

और की बात हम नहीं जानते, पर जिसके हृदय में थोड़ा-सा भी प्रेम है, वह दीन-दुर्बलों को कभी सता ही नहीं सकता। प्रेमी निर्दय कैसे हो सकता है? उनका उदार हृदय तो दया का आगार होता है। दीन को वह अपनी प्रेममयी दया का सब से बड़ा और पवित्र पात्र समझता है। दीन के सकरुण नेत्रों में उसे अपने प्रेमदेव की मनमोहिनी मूर्ति का दर्शन अनायास प्राप्त हो जाता है। दीन की मर्म भेदिनी आह में उस पागल को अपने दिल का दरवाज़ा दीन-हीनों के लिए दिन-रात खोले खड़ा रहता है और उधर परमात्मा का हृदय-द्वार उस दीन-प्रेमी का स्वागत करने को उत्सुक रहा करता है। प्रेमी का हृदय दीनों का भवन है, दीनों का हृदय दीनबन्धु भगवान का मन्दिर है और भगवान का हृदय प्रेमी का वास-स्थान है। प्रेमी के हृद्देश में दरिद्र-नारायण ही एक-मात्र प्रेम-पात्र हैं। दरिद्र-सेवा ही सच्ची ईश्वर-सेवा है। दीन, दयालु ही आस्तिक है, ज्ञानी है, भक्त है और प्रेमी है। दीन-दुखियों के दर्द का मर्मी ही महात्मा है। ग़रीबों की पीर जाननेहारा ही सच्चा पीर है। कबीर ने कहा है:—

'कबिरा' सोई पीर है, जो जानै पर-पीर।
जो पर-पीर न जानई, सो काफ़िर बेपीर॥

अभ्यास

१—आस्तिकता और 'ग़रीबों पर प्रेम' करने से क्या सम्बन्ध है?

२—इस वाक्य की स्पष्ट व्याख्या करो:—

'दीनबन्धु की ओर से हम दीनों का खासा शिकार खेल रहे हैं।'

३—सुदामा कौन थे ? उनकी और श्रीकृष्ण की मित्रता का वर्णन संक्षेप में करो।

४—श्रीकृष्ण ने विदुर के घर में साग-भाजी का भोग क्यों लगाया था ?

५—प्रमाणित करो कि भगवान दीनों से अधिक प्रेम करते हैं ?

६—महात्मा ईसा ने 'सिद्ध पुरुष बनने के लिए कौन सा उपाय बताया है ?

७—इस पाठ में आने वाले पद्यों का भावार्थ समझाओ।

८—व्याख्या करो और समझाओ कैसे बने हैं—
आतिथ्य, घिनौनी, रक्षित, टूटी-फूटी।

९—प्रथम अनुच्छेद का वाक्य-विश्लेषण करो—

१०—अपने वाक्यों में प्रयोग करो—
हरे हरे, फटे-फटे, दीन-हीनों, दीन-हृदय।

———o———

२—बादल

[ले०—पं० गोकुलचन्द शर्मा, एम० ए०]

[आप हिन्दी के विद्वान लेखक हैं। हिन्दी के पत्रों में आप बराबर लिखते रहते हैं। आप की भाषा बड़ी सुन्दर और प्रवाहपूर्ण होती है। आप भावात्मक लेख बड़े सुन्दर लिखते हैं।]

बादल ! हवा पर सवार होकर तुम इतने इतरा चले। तुम धनी हो, बली हो, मानी हो, दानी हो, पर बावले हो, उतावले हो,

अभिमानी हो, अज्ञानी हो। मैं तुम्हें बचपन से देख रहा हूँ। तुम्हारी लीला ही निराली है। बड़े होने पर लोगों में समझ आ जाती है, पर तुम अपने अल्हड़पन में ही मस्त हो। जब तुम्हारी अठखेलियों की ओर हम देखते हैं तब तो बड़े ही नयनाभिराम दृष्टि आते हो। शरद् की मुक्त धवल चाँदनी में चन्द्रमा की किरणों के झूले पर झूलते हुये तुम हमारे नयनों में झूलने लगते हो। उषाकाल में मरीचिमाली के कर-स्पर्श से तुम्हारी आभा कैसी कमनीय प्रतीत होती है! सान्ध्य गगन में तुम्हारा पीत-लोहित वर्ण और उस पर बिखरा हुआ सुरम्य रश्मिजाल गुफा को लौटते हुए सिंह की उपमा बन जाता है। तुम्हारा पर्वतीय विहार व्रज के गो-चारण का दृश्य उपस्थित कर देता है। वृक्षों के शिखरों पर तुम मुकुट से प्रतीत होते हो। पावस में इन्द्रचाप से अलंकृत तुम्हारा गात रसिकता से रेखाङ्कित चित्र सा जान पड़ता है। तुम्हारे मस्तक पर चमकती हुई बिजली की झलक तुम्हारे उग्र प्रभात को प्रकाशित करती है। परन्तु बादल! सभी प्रकाशवान पदार्थ सुवर्ण नहीं होते।

जीवनधन! तुम जीवनवर्षा करके वसुधा में जीवन लाते हो, परन्तु विवेक से काम कम लेते हो। तुम्हारी वर्षा का विशेष भाग मिलता है पाषाण-भूमि पर्वतों को वा जलराशि समुद्र को। बाग-बगीचे, खेती-बारी पर तुम्हारी कृपा प्रायः यदाकदा, समय कुसमय होती है और उस पर मूसलाधार गिराने में तो तुम्हारे 'गाँठ के पूरे और आँख के अन्धे' होने में संदेह नहीं रहता। जहाँ तुम स्वयं पत्थर बनकर गिरते हो, भला वहाँ क्या लाभ उठाते हो? अपने प्राण जायँ पर औरों का नाश हो, यही बात है न?

घनश्याम! तुम स्वयं काला रूप धारण करते हो। पर कालों पर बिजली बनकर गिरते हो। यह कहाँ का न्याय है? इस जाति

द्रोह से क्या लाभ ? घुमड़-घुमड़ और उमड़-उमड़ कर तुम प्रलय मचाते हो, तुम्हारा अभिमान तुम्हारे बल के साथ बढ़ता है। इसमें तुम मुँह की खा कर भी लज्जित नहीं होते। जानते हो कि निर्धन के धन 'गिरधारी', फिर भी वही अकड़। बताओ तो, तुमने अपने हिमायती इन्द्र को लेकर भी व्रज के ग्वाल-वालों का क्या कर लिया था ? उस समय तुम पानी तो हो गये थे; पर डूब कर मरे नहीं। ध्रुव की तपस्या मे ही तुमने विघ्न डालने में क्या कसर रक्खी थी ? पर वह ध्रुव से ध्रुव तक दौड़ लगा कर भी अध्रुव ही रहे।

तुम्हें पता है तुम कहाँ जन्मे हो ? तुम्हारा स्थान कहाँ है ? इसी धरती पर। इसलिये धरती पर पाँव रख कर चलो। सूर्य के तेज से ऊँचे उठ गये तो क्या तुम्हारा स्वभाव बदल गया ? तुम तो सदा से नीचे की ओर जाने वाले रहे हो। ऊँचे चढ़ कर कुछ ऊँची बातें भी सीख लो। हवाई घोड़े पर क्या चढ़े, अन्धे, बन कर उड़ते हो। तभी पहाड़ों से टक्कर खाकर तुम्हारे दांत टूटते हैं। हवा के चक्कर में तुम ऐसे आते हो कि घनचक्कर बन जाते हो।

तुम अपने गुणों की ओर देखो। तुम महादानी हो; सब को देते हो; किसी को विमुख नहीं करते। परन्तु पात्र-परीक्षा में अधूरे हो। चातक ने युग बिता दिये, तुम्हारी अनन्य भक्ति से कभी मुँह न मोड़ा। परन्तु आज तक तुमने उसका दुख-मोचन किया ? क्या अब भी उस दीन पर तुम ओले गिरा कर अपनी कठोरता का परिचय नहीं देते ? ऐसा क्यों ? भक्तों की तो भगवान ही सुध लेते हैं, परीक्षा की सीमा होती है। तुम केले पर गिरो तो कपूर बनकर संसार को महका दो, सीप के मुख में गिरो तो जगत् को मोतियों से जगमगा दो, खेतों पर गिरो तो पृथ्वी का अंचल धानी परिधान से लहलहा दो और भारतीय

किसान-प्रजा तुम्हारी छत्रछाया में राम-राज्य का अनुभव करने लगे। पर कब? जब तुम्हारा संकल्प ध्रुव हो, तुम्हें शुभाशुभ का विवेक हो। इसी से तो हम कहते हैं कि तुम बावले हो, उतावले हो।

अभ्यास

१—निम्न-लिखित कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करो :—
नयनों में झूलना, धरती पर पाँव न रखना, मुँह की खाना, निर्धन के धन गिरधारी, गांठ के पूरे और आँख के अन्धे।

२—इस पाठ के अन्तिम अनुच्छेद में से क्रिया विशेषण शब्द छाँटो और दो सर्वनाम शब्दों का पदान्वय भी करो।

३—बादल अपने बल का दुरुपयोग किस प्रकार करता है?

४—नीचे के शब्दों के अर्थ करो और उनका वाक्यों में प्रयोग करो। :—

अठखेलियाँ, विवेक, घनचक्कर, अंचल।

३–सम्भाषण में शिष्टाचार

[ले०—पं० कामता प्रसाद 'गुरु']

[आप जबलपुर के रहने वाले थे। हाल ही में आप का देहान्त हुआ है। आप हिन्दी के व्याकरणाचार्य थे। आप कविता भी करते थे। हिन्दी साहित्य के निर्माण में आपका बहुत ऊँचा स्थान है। आपके निधन से हिन्दी को बड़ी क्षति पहुँची है।]

मनुष्य की विद्या, बुद्धि और स्वभाव का पता उसकी बातचीत से लग जाता है, इसलिए उसे अपने विचार प्रकट करने के लिये बातचीत में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। सम्भाषण में

सावधानी की आवश्यकता इसलिये भी है कि बहुधा बात ही बात में कर्ष बढ़ जाता है। यथार्थ में मनुष्य की बातचीत ही उसके कार्यों की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किसी कवि ने कहा है—'कहैं कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बोलिबो न सीखो सब सीखो गयो धूल में'। जिसकी बातचीत में सभ्यता या शिष्टाचार का अभाव रहता है उससे लोग बातचीत करना नहीं चाहते।

सम्भाषण करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुरूप 'तुम' 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिये। इसमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' अथवा 'श्रीमान् का स्थान भी ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थिति के लोगों के लिये या अधिक घनिष्ठ परिचय वाले सम-वयस्क के लिये और 'श्रीमान्' का प्रयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महा-नुभावों के लिये किया जाय। बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़कर और किसी के लिये 'तू' का प्रयोग करना उचित न होगा। किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं के लिये केवल सर हिलाना असभ्यता है। उसके बदले में 'जी हाँ' या 'जी नहीं' कहना आवश्यक है। बातचीत इस प्रकार रुक रुक कर न की जाय जिससे 'श्रोता' को उकताहट मालूम पड़ने लगे। बातचीत करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बोलने वाला बहुत देर तक अपनी ही बात न सुनाता रहे जिससे दूसरों को बोलने का अवसर ही न मिले और बोलने वाले की बक बक से ऊब जाय। बातचीत बहुधा संवाद के रूप में होनी चाहिये जिससे श्रोता और वक्ता दोनों का अनुराग सम्भाषण में बना रहे।

सभ्य वार्तालाप में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि किसी के जी को दुखाने वाली कोई बात न कही जाय। सम्भा-षण को जहाँ तक हो सके, कटाक्ष, आक्षेप, व्यङ्ग, उपालम्भ

और अश्लीलता से मुक्त रखना चाहिये। अधिकार की अह-मन्यता में भी किसी के लिये कटु शब्द का प्रयोग करना अपने को असभ्य सिद्ध करना है। किसी नये व्यक्ति के विषय में परि-चय प्राप्त करने के लिये बातचीत में उत्सुकता न प्रकट की जाय और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो, किसी की जाति, वेतन, वंशावली, वय आदि न पूछा जाय। किसी से कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना उचित नहीं। यदि कोई सज्जन आपका प्रश्न सुनकर भी उसका उत्तर न दें तो उसके लिये उससे अधिक आग्रह न करना चाहिये। यदि ऐसा जान पड़े कि वह उतर देना भूल गये हैं तो अवश्य ही नम्रतापूर्वक दूसरी बार प्रश्न किया जाय।

बातचीत में आत्म-प्रशंसा को यथासम्भव दूर रखना चाहिये। साथ ही बातचीत का ढङ्ग भी ऐसा न हो कि श्रोता को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बातचीत में विनोद बहुत ही आनन्द लाता है; परन्तु सदैव हँसीठट्ठा करने की टेक वक्ता और श्रोता दोनों के लिये हानिकारक है। सम्भा-षण में उपमा और रूपक का प्रयोग भी बड़ी सावधानी से किया जाय, क्योंकि इससे बहुधा अर्थ से अनर्थ हो जाने का डर रहता है। यदि वार्तालाप करते समय कवियों के छोटे-छोटे पद्यों और कहावतों का उपयोग किया जाय तो इनसे बोलचाल में सर-लता और प्रामाणिकता आ जाती है। तथापि 'अति सब की बुरी होती है।'

यदि कहीं दो-चार सज्जन इकट्ठे किसी विषय पर बातचीत कर रहे हों तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे बातचीत करने लगना अनुचित है। कभी-कभी किसी मनुष्य को चुपचाप देख कर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह

करते हैं। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य का कर्तव्य है कि वह कोई मनोरंजक बात या विषय छेड़कर उसकी इच्छा पूर्ति करे।

किसी की असभ्य बातें सुनकर भी उसकी हाँ में हाँ मिलाना चापलूसी है और न्यायसंगत बात सुनकर भी उनका खंडन करना दुराग्रह है। लोगों को इन दोषों से बचना चाहिये। यद्यपि वार्तालाप में दूसरे के मत का समर्थन करने अथवा उसकी प्रशंसा में दो-चार शब्द कहने में चापलूसी का कुछ आभास रहता है, तथापि इतनी चापलूसी के बिना सम्भाषण नीरस और अप्रिय हो जाता है।

इसी प्रकार अपने मत का समर्थन करने और दूसरे मत का खंडन करने में कुछ न कुछ दुराग्रह झलकता है, तो भी इतना दुराग्रह सभ्य और शिक्षित समाज में क्षम्तव्य है। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निन्दा करना शिष्टता के विरुद्ध है और परनिन्दक को सभ्य तथा शिक्षित लोग बहुधा अनादर की दृष्टि से देखते हैं। विद्वानों के समाज में भी मतभेद होने के कारण उपस्थित होते हैं, इसलिये जब किसी के मत का खंडन करने का अवसर आवे तब बहुत ही नम्रता-पूर्वक और क्षमा-प्रार्थना करके उस मत का खंडन करना चाहिये। खंडन भी ऐसी चतुराई से किया जाय कि विरुद्ध मत वाले को बुरा न लगे। बातचीत में क्रोध के आवेश को रोकना चाहिए और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन धारण करना चाहिये। व्यंगों का उत्तर व्यङ्ग से ही देना नीति की दृष्टि से अनुचित नहीं है, तथापि शिष्टाचार उन्हें कम से कम एक बार सहन करने का परामर्श देता है।

जिससे बातचीत की जाती है उसकी योग्यता का विचार करके वर्णनात्मक अथवा विचारात्मक विषय पर सम्भाषण किया जाय। नवयुवकों से वेदान्त की चर्चा करना और वयोवृद्ध लोगों को शृङ्गार

रस की विशेषतायें बताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुये किसी स्त्री से (विशेष कर दूसरे घर की स्त्री से) बातचीत करना अशिष्ट समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी विचारात्मक कार्य में लगा हो तो उसके पास ही जोर-जोर से बात न करना चाहिये। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना उसके लिये हानिकारक है और उससे उसके रोग की भयंकरता का उल्लेख करना रोग से अधिक भयंकर है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धी की निन्दा की जा रही हो तो निन्दक को नम्रता-पूर्वक इस कार्य से विरत कर देना चाहिये और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव न पड़े तो किसी बहाने वहाँ से उठकर चले जाना चाहिये। इससे उसे अपनी मूर्खता और आपकी अप्रसन्नता का कुछ आभास हो जायगा। जो मनुष्य स्वयं अकारण निंदा नहीं करता उसके सामने दूसरों को भी ऐसी निंदा करने का साहस बहुधा नहीं होता।

किसी सभा-समाज या जमाव में अपने मित्र अथवा परिचित व्यक्ति से ऐसी भाषा अथवा शब्दों का उपयोग न करना चाहिये जिन्हें दूसरे न समझ सकें, अथवा जो उन्हें विचित्र मालूम पड़ें। ऐसे अवसर पर किसी विशेष विषय के अथवा अपने ही धन्धे या नौकरी की बातें करने से दूसरे लोगों को अरुचि उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी विशेष विषय अथवा गहन विषय पर बहुत समय तक सम्भाषण करने की आवश्यकता न हो तो थोड़े समय के अन्तर पर विषय को बदल देना अनुचित न होगा।

बातचीत करते समय भाषा की उपयोगिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। कई लोग साधारण पढ़े-लिखे लोगों के साथ

बातचीत करने में, 'विचार-स्वातन्त्रय','व्यक्तिगत आक्षेप', 'वैयक्तिक धारणा', आदि शब्दों का उपयोग करते हैं। ये साधारण पढ़े-लिखे लोगों की समझ में नहीं आ सकते। इसी प्रकार पंडितों के समाज में मनुष्यों के लिये 'मानुस' माता के लिये 'महतारी' पिता के लिए 'बाप' और भोजन के लिये 'खाना' कहना असंगत है।

हिन्दी भाषी लोग बहुधा श, ष और च्च का अशुद्ध उच्चारण करने के लिये प्रसिद्ध हैं, इसलिये शिक्षित लोगों को इस उच्चारण दोष से बचना चाहिये। कई 'उर्दू दां' सज्जन अपनी बातचीत में सिर को 'सर' आँगन को 'सहन', बज़ाज़ को 'बज्जाज़' और कलम को 'क़लम' कह कर अपनी भाषा-विज्ञता का परिचय देते हैं, जो शिक्षित-हिन्दी-भाषी-समाज में उपहास योग्य समझा जाता है। हमारे कई हिन्दी-भाषी भाई उर्दू-उच्चारण के शुद्धता के मोह में पड़कर, हिन्दी के 'ज' वाले शब्दों में 'ज' की अशुद्ध झड़ी लगाते हैं और कदाचित उसे अपनी उर्दूदानी का सबूत समझते हैं। पर यह उनकी भूल है, क्योंकि ऐसा उच्चारण अशुद्ध होने के कारण दोनों भाषाभाषियों द्वारा उपहास जनक होता है। हमने उर्दू न जाननेवाले एक वकील महाशय को 'ज़ायदाद', 'मज़बूर 'हर्ज़', और 'ताज़' कहते सुना है। कई एक महाशय तो 'मुझे ज़ल्दी घर ज़ाना है' कह कर वकील साहब को भी मात कर देते हैं। यद्यपि हमने उपर्युक्त वकील साहब को शिष्टता के अनुरोध से उस समय उनकी भूल नहीं बताई, पर हमें उनकी यथार्थ 'उर्दूदानी' का पता चल गया। कई लोग भूल से हिन्दी के 'फ' को 'फ़' कहते हैं; जिसका उदाहरण उनके 'फ़ल' फ़ूल और 'फ़न्दा' कहने में मिलता है।

शिष्ट भाषण में इन दोनों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े उस भाषा के ज़, फ़, और ग़ का उच्चारण करने

का किसी को साहस न करना चाहिये। क्योंकि इससे शिक्षित समाज में, विशेषकर शिक्षित मुसलमानों में हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गर्व करते हैं, और दूसरे लोगों के अशुद्ध उच्चारण की हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिये सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि उनके उर्दू शब्दों का उच्चारण हिंदी में प्रचलित अक्षरों में किया जाय। हिन्दी लिपि में उर्दू के संसर्ग से अक्षरों के नीचे जो बिन्दी लगाने की अनिष्टकर प्रथा है उसी से उच्चारण सम्बन्धिनी यह सब भूलें होती हैं।

मातृभाषा में बातचीत करते समय बीच-बीच में अँग्रेजी शब्दों को मिलाकर एक प्रकार की खिचड़ी भाषा बोलने की जो दूषित प्रथा है उसका तो सर्वथा त्याग किया जाना चाहिये। भारतवर्ष में इस 'खिचड़ी-सम्भाषण-प्रथा' का इतना प्रचार है कि कदाचित् ही कोई प्रान्त इसके आधिपत्य से बचा हो।

इसी प्रकार मातृभाषा में ऐसे प्रान्तीय शब्द भी न लाये जाँय जो या तो बिल्कुल भद्दे हों या दूसरे प्रांत वाले जिन्हें समझ न सकें। बिना किसी कारण से अपनी मातृभाषा को छोड़ अन्य भाषा में बात चीत करना शिष्टता के विरुद्ध है।

अभ्यास

१—बातचीत में भाषा की उपयोगिता पर ध्यान देना क्यों आवश्यक है?

२—'अति सब की बुरी होती है' इस कथन की पुष्टि करो।

३—सम्भाषण में अपनी प्रशंसा या हँसी-ठट्ठा क्यों नहीं करना चाहिए?

४—नीचे के शब्दों के अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो:—
परामर्श, नीरस, अश्लीलता, विनोद, आभास।

५—नीचे लिखे पद का अर्थ करो :—

कहैं कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बोलिबो न सीखो, सब सीखो गयो धूल में।

४—अफ्रीका-निवासियों का रहन-सहन

[ले०—पं० सद्गुरु शरण अवस्थी एम० ए०]

[इनका जन्म सं० १९८५ है। ये हिन्दी के श्रेष्ठ और विद्वान् लेखक हैं। इनके लेख अत्यन्त भावपूर्ण और परिमार्जित होते हैं। इन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर अच्छी कीर्ति प्राप्त की है। इनके लेख हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होते रहते हैं। ये आजकल विश्वम्भर नाथ सनातन धर्म कालेज, कानपुर में प्रोफेसर हैं। इन्होंने अपने इस लेख में अफ्रीका निवासियों की रहन-सहन पर अच्छा प्रकाश डाला है।]

अफ्रीका एक अत्यंत विस्तृत महाद्वीप है। भारतवर्ष की भाँति इसमें भी अनेक जातियाँ रहती हैं। यहाँ के निवासी असभ्य और जंगली हैं। उनके वृत्तान्त बड़े मनोहर हैं। उसको पढ़ने से उतना ही आनन्द आता है जितना "सहस्र रजनी चरित्र" अथवा अन्य किसी उपन्यास के पढ़ने से प्राप्त होता है। यहाँ अफ्रीका-वासियों का संक्षेप में वृत्तांत दिया जाता है।

लोगों में एक धारणा सी फैली है कि अफ्रीकावाले नितान्त कुरूप, भद्दे और जंगली हैं। बात भी अधिकांश में ठीक है। अफ्रीकावाले महाकाले होते हैं। किन्तु उनका शरीर सुगठित होता है और वे परिश्रम अधिक कर सकते हैं। अफ्रीका में गुदना गुदाने की भारी प्रथा है। ये लोग अपने शरीर के अनेक स्थानों पर उभरा हुआ गुदना गुदा लेते हैं। यह तेल लगाते और बाल भी सँवारते हैं। साबुन लगाने का शौक एक प्रकार

की लाल मिट्टी शरीर में पोत कर पूरा कर लेते हैं। अफ्रीकन जातियों का स्वभाव बड़ा विचित्र और सभ्य जातियों से सर्वथा भिन्न है। ये लोग क्षण में ही क्रोध-मूर्ति और क्षण में ही शान्ति के अवतार बन जाते हैं। ये लोग सामाजिक-प्रेम से हीन, आत्म सम्मान के इच्छुक, स्वार्थी और अन्धविश्वासी होते हैं। ये लोग थोड़ा खाकर भी अत्यंत भ्रमण कर सकते हैं। किन्तु प्यास इन्हें असह्य होती है। मदिरा इतनी पीते हैं कि पीते-पीते मूर्छित हो जाते हैं। कितनी विचित्र बात है कि अफ्रीका के मनुष्य परिश्रम शील होते हुए भी अपना बोझ सिर पर नहीं उठाते। ये लोग सदैव कुछ न कुछ याचना ही किया करते हैं। किसी पर कृतज्ञता प्रकट करना नहीं जानते। ये लोग अतिथि-सत्कार का मूल्य नहीं जानते। अपने अतिथि से कुछ न कुछ पाने की ही आशा रखते हैं। यदि कुछ न मिले तो फिर बड़ा कुव्यवहार करते हैं। ये परदेसियों की नक़ल करते हैं। कभी-कभी क्रोध में आकर उन पर प्रहार भी कर बैठते हैं। व्यापारियों से अवश्य सद्व्यवहार किया जाता है।

जिस प्रकार अपने देश में अनेक भाषायें हैं, किन्तु हिन्दी ही उन सब में प्रधान है, उसी प्रकार अफ्रीका में अनेक भाषायें प्रचलित हैं, पर उन सब में 'सुहेली' भाषा ही मुख्य है। उसमें न तो व्याकरण है, न पर्याप्त शब्द ही हैं और न वर्णमाला ही है। केवल स्वर-भेद से शब्दों के अर्थ में विभिन्नता आ जाती है।

अफ्रीका निवासी अधिकांश नग्न ही रहते हैं। किन्तु जब ये अपने काम पर जाते हैं तब कपड़ा लपेट लेते हैं। ये लोग नीला, रंग-विरंगा कपड़ा अधिक पसन्द करते हैं। अफ्रीका में एक बारबुंट् जाति है। इस जाति के लोग कपड़ा पहिनते हैं। इस जाति का राजा कुरता, टोपी, पगड़ी धोती आदि सब धारण करता है। कुछ लोग वृक्षों की छाल, बन्दर, भेड़, मृग, दुआ

और चीते की खाल लपेटे रहते हैं। इनकी स्त्रियाँ १२ फ़ीट का एक कपड़ा पहिनती हैं, जिसे "डाटी" अथवा "टोबी" कहते हैं। यह शब्द सम्भवतः धोती का अपभ्रंश है! यहाँ की स्त्रियाँ अपने बच्चों को पीठ पर बाँध लेती हैं।

अब अफ्रीका वालों के आभूषणों का हाल सुनिये। ये लोग बड़े शौक़ीन होते हैं। आभूषण धारण करने के लिये सदैव लालायित रहते हैं। किन्तु इनके आभूषण बड़े विचित्र होते हैं। स्त्रियाँ हाथों में चूड़ियों के स्थान पर पीतल, या तांबे के तार लपेट लेती हैं। कानों में कुंडल के सदृश कुछ पहिना जाता है। उनके गहने प्रायः काँच, पोत और मूंगे के दाने, हाँथी दाँत, लोहे, पीतल के तार आदि के होते हैं। वे सोने चाँदी और हीरा जवाहिरात से नितान्त अनभिज्ञ हैं। उन्हें केवल आभूषण प्रिय होते हैं। वनयमवेज़ी जाति के आभूषणों में और भी विचित्रता है। 'जबरा' नामक पशु के बाल को रंग कर सिर पर धारण कर लेते हैं। बैल की पूँछ का अन्तिम भाग भी आभूषण का काम देता है। शुतुर्मुर्ग के पंख भी सिर में खोंसे जाते हैं। पैरों में लोहे को घंटियाँ बांध दी जाती हैं जो टुनटुन शब्द करती हैं। गले में मालायें धारण की जाती हैं।

अफ्रीका वालों के ग्राम परस्पर कुछ अंतर से बसे होते हैं। घर तो बिलकुल झोंपड़ा ही होता है। दीवारों और छत में कोई भेद नहीं होता। ये झोपड़े पृथ्वी से ४ फुट ऊँचे होते हैं। छप्पर के ऊपर घास-फूस डाल देते हैं और यदा-कदा घर को राख से पोतते हैं। वे दीवारों में चित्रकारी भी बनाने की चेष्टा करते हैं। घर का महिला विभाग पृथक होता है। बजारामों जाति वालों के घर के द्वार इतने छोटे होते हैं कि बिना घुटनों के बल झुके आदमी उनमें घुस नहीं सकती। अफ्रीका वालों के घरों में सामान बहुत थोड़ा होता है। गाँव में एक बहुत बड़ा

वृक्ष होता है जहाँ लोग मनोविनोदार्थ एकत्र होते हैं। इनके सरदार का घर अवश्य स्वच्छ, सुन्दर होता है। पर उसके मरते ही गाँव उजाड़ डाला जाता है।

अब अफ्रीका वालों के रीति-व्यवहार सुनिये। वे बड़े विनोदी जीव होते हैं। खूब गाते - बजाते हैं। उत्सवों पर तो वे नाचते भी हैं। घर से बाहर अस्त्र लेकर निकलते हैं। ये लोग बाँसुरी भी बजाना जानते हैं। अफ्रीका वाले नितान्त जंगली ही नहीं होते; वे शिष्टाचार भी जानते हैं। अपने मित्र अथवा किसी परिचित से वे जब मिलते हैं तब प्रेमपूर्वक उसका कुशल समाचार पूछते हैं। अफ्रीका वाले बड़े ज्ञानी होते हैं। वे अपनी बात संक्षेप में नहीं कर सकते। संध्या समय प्रकाश के हेतु एक प्रकार की लकड़ी जलाते हैं। रात को जलती हुई लकड़ी लेकर चलते हैं। वे लिखना-पढ़ना नहीं जानते। वे लोग हाथी दाँत का व्यवहार करते हैं। वे मिरचा नहीं खाते। उन लोगों में पारिवारिक प्रेम नहीं होता। एक ही घर के प्राणी परस्पर लड़ा करते हैं। अपने मित्र या सम्बन्धी की मृत्यु पर वे रोते तक नहीं। शीतला रोग से पीड़ित व्यक्ति वन में एकाकी छोड़ दिया जाता है। अफ्रीका वालों में एक प्रकार का 'धर्म का भाई' होता है। यह सबंध जीवन पर्यन्त बना रहता है। अफ्रीका वाले रुपये का मूल नहीं जानते। रुपया पाते ही व्यर्थ के कामों में उसे व्यय कर डालते हैं।

अफ्रीका निवासी मादक वस्तुओं का सेवन अधिक करते हैं। यहाँ भाँग खूब उत्पन्न होती है। इसे यहां 'फैसूख' कहते हैं। अफ्रीका में धतूरे को 'मुरन्दा कहते हैं। बागोजा लोग तम्बाकू पीते वा सूंघते हैं। बहुत से उनमें लुटेरे भी होते हैं जो यात्रियों का लूट लेते हैं। राजा विदेशी यात्रियों से कर लेकर उन्हें अपने राज्य में आने देता है। अफ्रीका में कुछ चोर

जातियाँ भी हैं। चोर रात को मकानों में घुस आते हैं, पर पकड़ लिये जाने पर इनका सिर खूब कुचला जाता है।

अफ्रीका वासी जादू-टोना आदि को बहुत मानते हैं और उनके निवारणार्थ बलिदान करते हैं। यात्रा करते समय वे बकरे का सींग दाहिने हाथ में लपेट लेते हैं; जिससे विघ्न-बाधाओं से उनकी रक्षा होती रहे। वे लोग शकुन-अपशकुन का भी विचार रखते हैं। जब कोई मरने लगता है तब वे कभी रोते, कभी गाते और कभी गुर्राते हैं। वे शव को कब्र में खड़ा ही गाड़ते हैं। राजा के शव के साथ तीन जीवित स्त्रियाँ भी गाड़ दी जाती हैं।

अफ्रीका में हाथी दांत का बहुत व्यापार होता है। कहीं कहीं तो राजाओं ने हाथी दांत को आखेट पर लगा रखा है। जंगल से हाथी दांत बहिंगियों पर आता है। बहिंगियों में घंटियाँ लगी होती हैं जो अपने शब्द से सम्पूर्ण मार्ग को पूर्ण करती रहती हैं। दांत-वाहक मार्ग पर शोर, उपद्रव करते आते हैं। अपना उत्साह बनाये रखने को दांत लाते समय वे उत्साहवर्द्धक वाक्यों का प्रयोग करते हैं। सौदागार हाथी-दांत को बनियों के हाथ बेच देते हैं, जो उन्हें बदले में आटा, दाल, चावल देता है। सौदा प्रायः रात को होता है। अफ्रीका निवासी रुपया पैसा नहीं जानते।

अफ्रिकन जातियों में विवाह की प्रणाली बड़ी विचित्र है। कन्यायें प्रायः बेची होजाती हैं और उनका मूल्य १ से लेकर १० गाय तक होता है। छोटे उम्र की सन्तानों का विवाह नहीं होता। लड़के का विवाह तभी होता है जब वह अपनी स्त्री का भरण-पोषण करने में समर्थ हो जाता है। कभी कभी कन्या की माता विवाहेच्छु युवक से कुछ कपड़े मांगती है और मिल जाने पर अपनी कन्या का विवाह उस युवक से कर देती है। एक रस्म 'किरेम्बा' नामक होती है। कन्या का पिता वर को एक पगड़ी देता है जो उसके घर में सुरक्षित रखी जाती है। कभी-

कभी लड़के को कन्या के लिये आभूषण देने पड़ते हैं। विवाह हो जाने पर कन्या अपने पति-गृह जाती है। वहाँ बड़ा उत्सव मनाया जाता है। पति पत्नी का सम्बन्ध प्रेमपूर्ण नहीं होता। वे प्रायः लड़ा करते हैं। अफ्रीका वालों में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है। कोई कोई व्यक्ति तो ३०० स्त्रियाँ तक रखता है। तलाक़ की प्रथा भी है।

माताएँ बच्चों को झोले में रखकर पीठ पर लाद लेती हैं। बच्चों को एक साल तक दूध पिलाया जाता है और ४ वर्ष के बाद धनुर्वेद की शिक्षा दी जाती है। जिस बच्चे का दांत बाहर निकला रहता है वह मार डाला जाता है। युग्म बालक भी मार डाले जाते हैं। कभी कभी एक बालक को मार कर उसका स्थान एक कन्या से पूर्ण कर दिया जाता है। बच्चों के बाल तक नहीं काटे जाते। जब तक वह युवा न हो जाय, बच्चों को बाधाओं से बचाने का बहुत प्रयत्न किया जाता है। बालक १० वर्ष का होते होते जंगलों में भेड़ चराने लगता है। वह अपनी खेती अलग करता है और अपना झोंपड़ा पृथक बनाता है।

इसी प्रकार अफ्रीका वासियों के और भी अनेक मनोहर वृत्तान्त हैं। अफ्रीकावाले असभ्य व जंगली अवश्य हैं, किन्तु अब शनैः शनैः सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर होने लगे हैं। चाहे हम अपनी सभ्यता के अहङ्कार में उनसे क्रोध करें, पर यह मानना पड़ेगा कि उनमें कुछ बातें ऐसी हैं जो हम सभ्य भारतीयों में भी नहीं हैं।

प्रश्न

१—अफ्रीका निवासी किस ढंग के गहने पहनते हैं?

२—अफ्रीका वालों की कुछ सामाजिक रीतियों का वर्णन करो।

३—अफ्रीका में किस चीज़ का व्यापार अधिक होता है ?
४—अफ्रीका की स्त्रियां किस ढंग से अपना जीवन व्यतीत करती हैं ?
५—इस लेख का सारांश अपनी भाषा में प्रकट करो।
६—भूत कालिक क्रिया किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं ? इस पाठ में आने वाली भूतकालिक क्रियाओं को चुनो।
७—क्या हैं और कैसे बने हैं—सामाजिक, निवासी, विदेशी, प्राणी।

५-क्रोध

[ले०—पं० रामचन्द्र शुक्ल]

[आचार्य पं रामचन्द्र शुक्ल का जन्म अगोना, जिला बस्ती में सं० १९४१ में हुआ था। छः वर्ष की अवस्था में उन्होंने विद्याध्ययन आरम्भ किया और सन् १९०१ में उन्होंने मिर्जापुर से एंट्रेन्स की परीक्षा पास की। इसके आगे वह न पढ़ सके। कुछ दिनों पश्चात् मिर्जापुर के मिशन स्कूल में वह अध्यापक हो गये। वह बराबर हिन्दी की सेवा करते रहे। जब काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग खुला तब वह वहाँ अध्यापक हो गये। इस पद से उन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। वह हिन्दी के गम्भीर लेखक और आलोचक थे। हिन्दी-साहित्य का इतिहास उनकी अमर रचना है। निबन्ध भी वह अच्छा लिखते थे। २ फरवरी सन् १९४१ को उनका स्वर्गवास हुआ।]

क्रोध दुःख के कारण के साक्षात्कार वा अनुमान से उत्पन्न होता है। साक्षात्कार के समय दुःख और उसके कारण के सम्बन्ध का परिज्ञान आवश्यक है। जैसे तीन चार महीने के बच्चे को कोई हाथ उठा कर मारदे तो उसने हाथ उठाते तो देखा है पर अपनी पीड़ा और उसके हाथ उठाने से क्या

सम्बन्ध है यह वह नहीं जानता। अतः वह केवल रोकर अपना दुःख-मात्र प्रकट कर देता है। दुःख के कारण के साक्षात्कार के निश्चय के बिना क्रोध का उदय नहीं हो सकता। दुःख के समान हेतु पर प्रबल प्रभाव डालने में प्रवृत्ति करने की मानसिक क्रिया होने के कारण क्रोध का आविर्भाव बहुत पहिले देखा जाता है। शिशु अपनी माता की आकृति से अभ्यस्त हो ज्यों ही यह जान जाता है कि दूध इसी में मिलता है, भूखा होने पर वह उसकी आहट पर रोने में कुछ क्रोध के चिह्न दिखाने लगता है।

सामाजिक जीवन के लिए क्रोध की बड़ी आवश्यकता है। यदि क्रोध न हो तो जीव बहुत से दुखों की चिर निवृत्त के लिए यत्न ही न करे। कोई मनुष्य किसी दुष्ट के नित्य प्रहार सहता है। यदि क्रोध का विकास नहीं हुआ है तो वह केवल 'आह ऊह' करेगा, जिसका उस दुष्ट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उस दुष्ट के हृदय में दया आदि उत्पन्न करने में बड़ी देर लगेगी। प्रकृति किसी को इतना समय ऐसे छोटे छोटे कामों के लिये नहीं दे सकती। भय के द्वारा भी प्राणी अपनी रक्षा करता है, पर समाज में इस प्रकार की दुःख निवृत्ति चिरस्थायिनी नहीं होती। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि क्रोध के समय क्रोधकर्त्ता के हृदय में भावी दुःख से बचने की इच्छा रहती है, बल्कि चेतन प्रकृति के भीतर क्रोध इसीलिये है।

ऊपर कहा जा चुका है कि क्रोध दुःख के कारण-परिज्ञान वा साक्षात्कार से होता है। अतः एक तो जहाँ इस ज्ञान में त्रुटि हुई वहाँ क्रोध धोखा देता है। दूसरी बात यह है कि क्रोध जिस ओर में दुःख आता है उसी ओर देखता है। अपने धारणकर्त्ता की ओर नहीं। जिससे दुःख पहुँचा, क्रोध वहाँ पहुँचेगा। उसका नाश हो अथवा दुःख पहुँचे यही क्रोध का लक्ष्य है। क्रोध करने वाले का फिर क्या होगा इससे उसे कुछ सरोकार नहीं। इसी

से एक तो मनोवेग ही एक दूसरे को परमित किया करते हैं, दूसरे विचार शक्ति भी उन पर अंकुश रखती है। यदि क्रोध इतना उग्र हुआ कि हृदय में दुःख के कारण की अविरोधशक्ति के रूप और परिणाम के निश्चय, दया, भय आदि और विकारों के संचार तथा उचित अनुचित के विचार के लिये जगह ही नहीं रही तो बहुत हानि पहुँच जाती है। जैसे कोई सुने कि उसका शत्रु २० आदमी लेकर मारने आ रहा है और वह चट क्रोध से व्याकुल होकर बिना शत्रु की शक्ति का विचार वा भय किये उसे मारने के लिये अकेला दौड़े तो उसके मारे जाने में कम सन्देह है। अन्तःकरण के यथार्थ निश्चय के उपरान्त आवश्यक मात्रा में और उपयुक्त स्थिति में ही क्रोध वह काम दे सकता है जिसके लिये उसका विकास होता है। कभी-कभी लोग अपने कुटुम्बियों वा स्नेहियों से झगड़ा कर उन्हें पीछे से दुःख पहुँचाने के लिये अपना सिर तक पटक देते हैं। पर सिर पटकना अपने को दुःख पहुँचाने के अभिप्राय से नहीं होता, क्योंकि बिल्कुल बेगानों के साथ कोई ऐसा नहीं करता। जब किसी को क्रोध में सिर पटकते देखे तब समझ लेना चाहिये कि उसका क्रोध किसी व्यक्ति के ऊपर है जिसे उसके सिर पटकने की परवाह है। अर्थात् जिसे उसके सिर फूटने से यदि उस समय नहीं तो आगे चलकर दुःख पहुँचेगा।

क्रोध का वेग इतना प्रबल होता है कि कभी-कभी मनुष्य यह विचार नहीं करता कि जिसने दुःख पहुँचाया है, उसमें दुःख पहुँचाने की इच्छा थी या नहीं। इसी से कभी अचानक पैर कुचल जाने पर कोई किसी को मार बैठता है। चाणक्य ब्राह्मण अपना विवाह करने जाता था, मार्ग में कुश उसके पैर में चुभे। वह चट मठा और कुदाला लेकर पहुँचा और कुशों को उखाड़ कर जड़ों में मठा देने लगा। इस प्रकार का क्रोध असंस्कृत है।

यात्रियों ने बहुत से ऐसे जंगलियों का हाल लिखा है जो रास्ते में पत्थर की ठोकर लगने पर बिना उसको चूर-चूर किये आगे नहीं बढ़ते। अधिक अभ्यास के कारण यदि कोई मनोवेग अधिक प्रबल पड़ गया तो वह अन्तःकरण में अव्यवस्था उत्पन्न कर मनुष्य को फिर बचपन से मिलती-जुलती अवस्था में ले जाकर पटक देता है।

जिससे एक बार दुःख पहुँचा पर उसके दुहराये जाने की सम्भावना कुछ भी नहीं है उसको जो कष्ट पहुँचाया जाता है वह प्रतिकार कहलाता है। एक दूसरे से अपरिचित दो आदमी रेल पर चले जाते हैं जिनमें से एक को आगे के ही स्टेशन पर उतरना है। स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते बात ही बात में एक ने दूसरे को तमाचा जड़ दिया और उतरने की तैयारी करने लगा। अब दूसरा मनुष्य भी यदि उतरते-उतरते एक तमाचा जड़ दे तो यह भी प्रतिकार या बदला कहलायेगा, क्योंकि उसे फिर उसी व्यक्ति से तमाचा खाने की कोई सम्भावना नहीं थी। जहाँ और दुःख पहुँचाने की कुछ भी सम्भावना होगी वहाँ शुद्ध प्रतिकार न होगा। हमारा पड़ोसी कई दिनों से नित्य आकर हमें दो चार टेढ़ी-सीधी सुना जाता है। यदि हम उसको एक दिन पकड़ कर पीट दें तो हमारा यह कर्म शुद्ध प्रतिकार नहीं कहलायेगा, क्योंकि नित्य गाली सुनने के दुःख से बचने के परिणाम की ओर कभी हमारी दृष्टि नहीं रही। इन दोनों अवस्थाओं को ध्यान-पूर्वक देखने से पता लगेगा कि दुःख से उद्विग्न दुःख दाता को कष्ट पहुँचाने की प्रवृत्ति दोनों में है। पर एक में वह परिणाम आदि के विचार को बिल्कुल छोड़े हुए हैं और दूसरे में कुछ लिये हुये। इनमें से पहले प्रकार का क्रोध निष्फल समझा जाता है। पर थोड़े धैर्य के साथ सोचने से जान पड़ेगा कि इस प्रकार के क्रोध से स्वार्थ-साधन अवश्य हो जाता है। दुःख

पहुँचाने वाले से हमें फिर दुःख पहुँचने का डर न सही, पर समाज को तो है। इससे उसे उचित दण्ड देने से पहले तो उसकी शिक्षा व भलाई हो जाती है, फिर समाज के और लोगों का भी बचाव हो जाता है। क्रोधकर्ता की दृष्टि तो इन परिणामों की ओर नहीं रहती।

क्रोध सब मनोविकारों से फुर्तीला है। इससे अवसर पड़ने पर यह और दूसरे मनोविकारों का भी साथ देकर उनकी सहायता करता है। कभी वह दया के साथ कूदता है, कभी घृणा के। एक क्रूर कुमार्गी किसी अनाथ अबला के साथ अत्याचार कर रहा है। हमारे हृदय में उस अनाथ अबला के प्रति दया उमड़ रही है। पर दया की पहुँच तो आर्त तक ही है। यदि वह स्त्री भूखी होती तो हम उसे कुछ रुपया पैसा देकर अपने को शान्त कर लेते। पर यहाँ तो उस दुःख का हेतु मूर्तिमान तथा अपने विरुद्ध प्रयत्नों को ज्ञान पूर्वक व्यर्थ करने की शक्ति रखने वाला है। ऐसी अवस्था में क्रोध ही उस अत्याचारी के दमन के लिये उत्तेजित करता है जिसके बिना हमारी दया ही व्यर्थ जाती है। क्रोध अपनी इस सहायता के बदले में दया की वाहवाही को नहीं बटाता। काम क्रोध करता है और नाम दया का ही होता है। लोग यही कहते हैं, 'उसने दया करके बचा लिया' यह कोई नहीं कहता कि क्रोध करके बचा लिया। ऐसे अवसरों पर यदि क्रोध दया का साथ न दे तो दया अपने अनुकूल परिणाम उपस्थित ही नहीं कर सकती। एक अघोरी हमारे सामने मक्खियाँ मार कर खा रहा है और हमें घिन लग रही है। हम उसे नम्रता पूर्वक हटने के लिये कह रहे हैं और वह नहीं सुन रहा है। चट हमें क्रोध आ जाता है और हम उसे बलात् हटाने प्रवृत्त होते हैं।

क्रोध के निरोध का उपदेश अर्थपरायण और धर्मपरायण

दोनों देते हैं, पर दोनों में जिसे अति से अधिक सावधान रहना चाहिये वहां कुछ भी नहीं रहता। बाकी रुपया वसूल करने का ढङ्ग बताने वाले चाहे कड़े पड़ने की शिक्षा दे भी दें, पर धन के साथ धर्म की ध्वजा लेकर चलने वाला धोके में भी क्रोध को पाप का बाप ही कहेगा। क्रोध करने का अभ्यास ठगों और स्वार्थियों को सिद्धों और साधकों से कम नहीं होता। जिससे कुछ स्वार्थ निकालना रहता है, जिसे बातों में फंसा कर ठगना रहता है उसकी कठोर से कठोर और अनुचित से अनुचित बातों पर न जाने कितने लोग जरा भी क्रोध नहीं करते। पर उनका यह अक्रोध न धर्म का लक्षण है, न साधन का।

वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है। जिससे हमें दुःख पहुँचा हो और हमने जो क्रोध किया वह यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो वह वैर कहलाता है। इस स्थायी रूप में टिक जाने के कारण क्रोध की क्षिप्रता और हड़बड़ी तो कम हो जाती है, पर धैर्य, विचार और युक्ति के साथ लक्ष्य को पीड़ित करने की प्रेरणा बराबर बहुत काल तक किया करता है। क्रोध अपना बचाव करते हुये शत्रु को पीड़ित करने की युक्ति आदि सोचने का समय नहीं देता, पर बैर इसके लिये बहुत समय देता है। वास्तव में क्रोध और बैर में केवल काल भेद है। दुःख पहुँचने के साथ ही दुःखदाता को पीड़ित करने की प्रेरणा क्रोध और कुछ काल बीत जाने पर बैर है। किसी ने हमें गाली दी। यदि हमने उसी वक्त उसे मार दिया तो हमने क्रोध किया। मान लीजिये वह गाली देकर कहीं भाग गया और दो महीने बाद मिला। अब बिना कुछ गाली सुने हमने उसे मार दिया तो यह हमारा बैर निकालना हुआ। इस विवरण से स्पष्ट है कि बैर उन्हीं प्राणियों में होता है जिनमें धारणा अर्थात् भावों के संचय की शक्ति होती है। पशु और बच्चे किसी से

बैर नहीं मानते। वे क्रोध करते हैं और थोड़ी देर पश्चात् भूल जाते हैं! क्रोध का यह स्थायी रूप भी आपदाओं को पहिचान कराकर उनसे बहुत काल तक बचाये रखने के लिये दिया गया है।

प्रश्न

१—क्रोध के पाठ में लेखक ने क्या भाव प्रकट किये हैं?

२—विकास, अभ्यास, कुमार्ग, आविर्भाव, अविरोध, निरोध, शब्दों का अलग अलग शब्दों में अर्थ लिखकर प्रयोग करो।

३—'बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है,' इसका भाव क्या है?

४—'सामाजिक जीवन में क्रोध आवश्यक है,' इस कथन से तुम कहाँ तक सहमत हो?

६—मिताचरण

[ले०—पं० बालकृष्ण भट्ट]

[पं० बालकृष्ण भट्ट का जन्म सन् १८४४ में हुआ था। उन्हें बचपन में घर पर ही संस्कृत की शिक्षा दी गई। इसके बाद मिशन स्कूल में उन्हें अँग्रेज़ी की शिक्षा मिली। पादरी से वाद-विवाद हो जाने पर उन्होंने, अँग्रेज़ी पढ़ना छोड़कर पुनः संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। इसी समय वह जमुना मिशन स्कूल में अध्यापक हो गये। हिन्दी के वह बड़े अच्छे और प्रसिद्ध लेखक थे। भारतेन्दु के समय में उनकी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों 'में' गणना होती थी। सन् १९१४ में उनका देहान्त हुआ।]

जिस वर्ष वृष्टि नहीं होती, अथवा बहुत ही स्वल्प होती है उस वर्ष अकाल पड़ने की सम्भावना हुआ करती है। यों ही जब-जब अति वृष्टि होती है तब भी बहुत से खेत बह जाते हैं।

इससे अन्न की उत्पत्ति में बाधा पड़ती है। यह प्राकृतिक नियम हमें सिखलाता है कि जो बात मर्यादा-बद्ध नहीं होती वह कष्ट का हेतु होती है। यदि हम परिश्रम करना छोड़ दें तो कुछ ही काल में आलसी होकर और धन, बल मान इत्यादि खोकर नाना जाति के रोगशोकादि के भोजन बन बैठेंगे। अथच, अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करें तो शरीर शिथिल एवं मन खेदित होने के कारण किसी काम के न रहेंगे। भोजन यदि स्वादिष्ट होने से भूख से अधिक खायँ तो आलस्य और अपच के कारण भाँति-भाँति के कष्ट सहने पड़ेंगे तथा अत्यन्त थोड़ा भोजन करें तो भी निर्बलता जनित उपाधि-समूह झेलने पड़ेंगे। इसलिये बुद्धिमान को चाहिये कि जो काम करे परिणाम के भीतर ही करे। क्योंकि जीवन को सुविधा-सम्पन्न बनाने के लिये जैसे सभी बातों का अभ्यास रखना आवश्यक है वैसे ही यह स्मरण रखना भी प्रयोजनीय है कि अति किसी बात की अच्छी नहीं होती। परिणाम में उनके द्वारा दुःख ही होता है। जिन बातों को सारा संसार एक स्वर से उत्तम कहता है उनकी प्राप्ति के लिये भी यदि परिमित (सीमा) का त्याग कर दिया जाय तो क्लेश और हानि हुए बिना नहीं रहती। विद्या, धन अथवा धर्म के संचय करने में जितना श्रम किया जाय, उतनी ही कल्याण की वृद्धि होती है। किन्तु साथ ही यह भी कर्त्तव्य है कि यदि एकदम महा धुरन्धर पण्डित, अगणित सम्पदा-सम्पन्न, परम धार्मिक बनने की धुन में आकर आहार-विहारादि के नियमों की ओर से ध्यान हटा लें, तो थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य से रहित होकर पढ़ने लिखने के काम के नहीं रहेंगे वा पढ़ा पढ़ाया निष्फल हो जायगा, भलाई-बुराई का यथेष्ट निर्णय न करसकेंगे। जिन सत्कार्यों के करने को जी छटपटायेगा, वे हाथ-पाँवों से होने कठिन हो जाँयगे, क्योंकि जिस अंग या पदार्थ से अत्यधिक काम

लिया जाता है वा नहीं लिया जाता, वह सामर्थ्य हीन होकर आवश्यकता के समय काम नहीं दे सकता और इसी से किसी की दशा एक-सी नहीं रहती। इसीलिये समय पर सभी कुछ करने की आवश्यकता पड़ती है तथा उसकी पूर्त्ति के उपयुक्त शक्ति के अभाव से यदि वह न हो सका तो बहुत काल तक क्लेश वा हानि अथवा अपकीर्ति सहनी पड़ती है। जो लोग सम्पत्ति की दशा में धन का भोग वा दान अनियमित रूप से करते हैं उन्हें जब उदारता-प्रदर्शन का अवसर पड़ता है तब उचित व्यय करने के योग्य रुपया नहीं मिलता। अथवा, जो लोग खाने, पहिनने, देने खिलाने आदि में कंजूसी करते रहते हैं उनको आवश्यकता के आ पड़ने पर पैसे-पैसे पर जी निकलता है। इन दोनों प्रकार के पुरुष ऐसी अवस्था में जो कुछ करते हैं, सन्तुष्ट भाव से नहीं करते। अतः बुद्धिमान का कर्त्तव्य यही है कि जब जैसा आ पड़े तब वैसा ही बन जाने के लिये सन्नद्ध रहे और यह तभी हो सकता है जब मिताचरण के द्वारा शरीर एवं अधिकृत वस्तुमात्र रक्षित अथच कार्योयुक्त रक्खा जाय। यद्यपि समय विशेष की उपस्थिति में जी खोल कर अपनी शक्ति से कहीं साहस, धैर्य, उद्योग उदारतादि का प्रदर्शन ही साधारण पुरुषों का लक्षण है। इतिहास में वही लोग गौरवास्पद होते हैं जो काम पड़ने पर अपने धन अथवा प्राण तक का मोह न करके कर्त्तव्य-पालन का उदाहरण दिखा देते हैं। किन्तु ऐसा अवसर जीवन भर में दो ही एक बार वा बहुत हुआ तो दस-पाँच बार वित्त बाहर काम करने का आता है और उसी में दृढ़ रहना जन्म धारण की सार्थकता का सम्पादन करना है। ऐसे अवसर पर उचित आचरण वही दिखा सकते हैं जिनकी आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकार की पूँजी सर्वथा सुस्थिर हो, और शनैः बढ़ती रहती हो। यह योग्यता जिसमें न हो, वह साधारण जन-समुदाय में

भी गणनीय नहीं है, इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये पाठक गण को चाहिये कि शरीर के सभी अवयवों और मन के सभी शक्तियों से काम लेते रहा करें। पर उतना ही, जितने में अधिक थकावट न हो। अन्न वस्त्रादि में व्यय भी इतना ही किया करें जितना सामर्थ्य के अन्तर्गत हो। दूसरों के साथ व्यवहार-बर्ताव भी इतना ही रक्खा करें जितना सर्वदा निभ सके। अपनी वाणी और वेष भी ऐसा ही रक्खा करें, जैसा कुल की मर्यादा के विरुद्ध और लोक समुदाय को अप्रिय न हो। बस, ऐसा ध्यान बना रखने और अभ्यास करते रहने से मिताचारी और सञ्जीवनाधिकारी होने में कोई संशय न रहेगा और आवश्यकता के समय तदनुकूल कार्यों की पूर्ण-कारिणी सामग्री का अभाव भी न रहेगा।

प्रश्न

१—'मिताचरण' का क्या अर्थ है? इसकी क्या उपयोगिता है?

२—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ करोः—

परिमित, गौरवास्पद सञ्जीवनाधिकारी, संशय और सर्वदा।

३ — नीचे लिखे को वाक्यों में प्रयोग करोः—

जी ललचाना, अति वृष्टि होना।

४ —तुम्हें इस पाठ से क्या शिक्षा मिलती है?

७—दो-दो बातें

[ले०—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय]

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म सं० १६२२ में निज़ामाबाद में जिला आज़मगढ़ में हुआ था। पांच वर्ष की अवस्था में उन्होंने पढ़ना आरम्भ किया और सं० १६४१ में उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। इसके बाद वह अँग्रेजी पढ़ने के लिए काशी गये, पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण आगे पढ़ नहीं सके। पहले उन्होंने अध्यापन कार्य किया और फिर कानूनगो हो गये। बाबा सुमेर सिंह के प्रभाव से उन्होंने कविता करना आरम्भ किया। धीरे-धीरे वह खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हो गये। 'प्रिय प्रवास' उनका प्रसिद्ध महाकाव्य है। हिन्दी-साहित्य का इतिहास भी उन्होंने लिखा है सं० २००२ में उनका स्वर्गवास हुआ।]

कोई दिन था कि हम कुछ थे, कुछ नहीं, बहुत कुछ थे। देवता हमारा मुँह जोहते थे, स्वर्ग में हमारी धूम थी और धरती हमारे उधारने से ही उधरती थी। हम आसमान में उड़ते, समुद्र को छानते जंगलों को खङ्गालते और पहाड़ों को हिला देते थे, दुनियाँ में हमारे नाम लेवा थे, देश-देश में हमारी धाक थी, दिशाएँ हमारी जोत से जगमगाती थीं और आसमान के तारे हमें आँख फाड़-फाड़ कर देखते थे। हम अन्धकार में उजाला करते थे, बन्द आँखों को खोलते थे, सोतों को जगाते थे, और उकठे काठ को भी हरा भरा बना देते थे। सूरमापन हम पर निछावर होता था, दिलेरी हमारे बांट में पड़ी थी, बहादुरी हमारा दम भरती थी, और आनबान हमारा बाना था। हम बेजान में जान डालते थे, सूखी नसों में लहू भरते थे, बिगड़ों को बनाते थे, गिरों को उठाते थे, बेजड़ों की जड़ जमाते थे,

और भूलों को राह लगाते थे। बड़े-बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल जाते थे, हमारा तेवर बदलते ही बेतरह आँख बदलने वाले राजा महाराजाओं का रंग बदल जाता था, और दुनियाँ में हवा बाँधने वालों के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगती थीं। आज ये बातें मुँह पर नहीं लाई जा सकतीं। अब हमारा रंग इतना बिगड़ गया है कि हम पहचाने भी नहीं जा सकते। हमीं लोगों में ऐसे लोग हैं जो यह जानते ही नहीं कि हम क्या और कौन थे और कब क्या हो गये? इसमें न किसी का जादू काम कर रहा है, और न किसी का टोना, न दैव हमारे पीछे पड़ा है, न बुरा भाग, जो कुछ हम भोग रहे हैं, वे हमारी करतूतों के फल हैं और आज भी वे हमें रसातल ले जा रही हैं।

आज दिन हमारे सिरधरों का ही सिर नहीं फिर गया है, आगे चलने वाले भी आग लगा रहे हैं, और भगवा पहनाने वाले भी भांग खाये बैठे हैं। जिनको वीर होने का दावा है, वे भाइयों की मूँछें उखाड़ कर मूँछ मरोड़ रहे हैं, दूसरों का घर मूस कर अपना घर भर रहे हैं, औरों के लहू से हाथ रंग कर अपना हाथ गरम कर रहे हैं, सगों का पेट काट कर अपना पेट पाल रहे हैं, और बेबसों के घर को जला कर अपने घर में घी के दिये बाल रहे हैं। पूंजी वालों का पेट दिन-दिन मोटा हो रहा है पर किसी सटे पेट वाले को देखते ही उनकी आंख पर पट्टी बंध जाती है। संडे-मुसंडे डंडे के बल माल भले ही चाभ लें, पर भूख से जिनकी आंखें नाच रही हैं, उनको वे कानीं कौड़ी भी देने के रवादार नहीं। जो हमारा मुंह देखकर जीते हैं, हम उन्हीं को निगल रहे हैं, और जो हमारे भरोसे पर पांव फैला कर सोते हैं, हम उन्हीं को आंखे बन्द करके लूट रहे हैं। हमीं में डूब कर पानी पीने वाले हैं, आंख में उंगली करने वाले

हैं, खड़े बाल निगलने वाले हैं, आग लगा कर पानी को दौड़ने वाले हैं, रंगे सियार हैं, भागा बिल्ली और काठ के उल्लू हैं।

आज हमारे घरों में फूट पांव तोड़कर बैठी है, बैर अकड़ा हुआ खड़ा है, अनबन की बन आई है और रगड़े-झगड़े गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। हमसे लम्बी-लम्बी बातें सुन लो, लम्बी डींगें भरने की कहानियां कहलवा लो, लेकिन लम्बी तान कर सोना ही हमें पसन्द है। आंख होते हमें सूझता नहीं, कान होते हम सुनते नहीं, हाथ होते हम बेहाथ हैं, और पांव होते बेपांव। समझ चल बसी, विचारों का दिवाला निकल गया, आस पर ओस पड़ गई, सूझ को पाला मार गया, मगर कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। दूसरे धूल में फूल लगते हैं, हमे फूल में भी धूल ही हाथ आती है। लोग कांटों में फूल चुनते हैं हम कांटों में उलझ-उलझ मरते हैं। आबरू उतर गई, पत-पानी चला गया, बड़ाई धूल में मिल गई, मगर हम धूल फांकने में ही मस्त हैं।

हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं, मगर काम आंखों के तारे भी नहीं देते। हम पर लगा कर उड़ना चाहते हैं, मगर उठाने से पांव भी नहीं उठते। हम पालिश करके उसके रङ्ग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पालिसी हमारे बने हुये रङ्ग को बदरङ्ग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल जोल का, मगर न जाने कहां का खटराग पेट में भरा पड़ा है। हम जाति-जाति को मिलाते चलते हैं, मगर ताव अछूतों से आंख मिलाने को भी नहीं। हम जातिहित को तानें सुनाने के लिए सामने आते हैं, मगर तान दे-दे कलेजा छलनी बना देते हैं। हम कुल हिन्दू-जाति को एक रङ्ग में रङ्गना चाहते हैं, मगर जाति-जाति के अपनी अपनी डफली और अपने-अपने राग ने रही-सही एकता को भी धता बता दिया है। हम चाहते हैं, देश को उठाना, पर आप मुँह के बल गिर पड़ते हैं। हमें देश की दशा सुधारने

की धुन हैं, पर आप सुधारने पर भी नहीं सुधरते। हम चाहते हैं जाति का कसर निकालना, मगर हमारे जी की कसर निकाले भी नहीं निकलती। हम जाति को ऊँचा उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नहीं। हम चलते हैं जाति को जिलाने, मगर हमें मर मिटना आता ही नहीं।

हिन्दू जाति अपनी भूलभुलैयां में बेतरह फँसी है, इससे हमारा जी दुखी है, हमारा कलेजा चोट खा रहा है, दिल में फफोले पड़ रहे हैं। जितनी ही जल्द हिन्दुओं की आँखें खुलें, उतना ही अच्छा, हमें उनका जी दुखाना, उन्हें कोसना, उन्हें बनाना, उन्हें खिझाना; उनकी उमङ्गों को मटियामेट करना पसन्द नहीं, अपने हाथ से अपने पांव में कुल्हाड़ी कौन मारेगा, अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन कोंचेगा? मगर अपनी बुराइयों, कमजोरियों, भूल-चूकों, ऐबों, लापरवाहियों और नासमझियों पर आंख डालनी पड़ेगी, बिना इसके निर्वाह नहीं।

प्रश्न

१—नीचे लिखे मुहावरों को वाक्यों में प्रयोग करो:—

मुँह जोहना, तेवर बदलना, रंग बदलना, हवा बांधना, पेट काटना, दांतपीसना।

२—नीचे के शब्दों के अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो:—

नाम लेवा, धाक, सिरधर, संडे मुसंडे।

३—नीचे के वाक्यों का आशय सरल भाषा में लिखो:—

अ—सूरमापन हम पर निछावर........हमारा बाना था।

ब—हमीं में डूबकर........काठ के उल्लू हैं।

४—हिन्दू समाज में आजकल क्या-क्या दोष आ गये हैं?

८—साहस और अध्यवसाय

[ले०—पं० रामचन्द्र शुक्ल]

साहस एक ऐसा गुण है जिसका आदर प्रत्येक मनुष्य बड़ी प्रसन्नता से करता है। जीवन की सारी कठिनाइयां केवल शक्ति से दूर होती हैं। दृढ़ प्रतिज्ञा के सामने किसी प्रकार का भय नहीं ठहर सकता। यदि आवश्यकता पड़े तो मनुष्य उसके बल पर अपनी प्रतिज्ञा के लिये सदैव अपने प्राण तक दे देगा।

भला कायरता को कौन सराहेगा ? संसार के सब लोग उसे बुरा ही कहेंगे। कायर मनुष्य नीच और नामर्द होता है। उसमें अपने विचारों पर खड़े होने का साहस नहीं होता। वह सदा गुलाम बनने के लिये तैयार रहता है। ऐसे मनुष्य में सद्‌गुणों का सदा अभाव ही रहता है। पर जो मनुष्य साहसी होता है, उसमें अनेक सद्‌गुण आप से आप आ जाते हैं। दूसरों पर उसका प्रभाव बहुत ही अद्‌भुत रूप से पड़ता है और यह दूसरों के लिये आदर्श हो जाता है। उसके साथियों और सम्बन्धियों में भी अनेक गुणों का संचार होने लगता है। लोग उसका साथ और अनुकरण करके अपने प्राण तक दे देते हैं।

जो लोग बहुत बड़ा काम कर लेते हों, वास्तव में वह आदर या प्रशंसा के पात्र नहीं होते। वास्तविक आदर और प्रशंसा के पात्र वे ही हैं, जो उस कार्य को अरम्भ करते अथवा उसकी पूर्ति में किसी प्रकार के सहायक होते हैं। समाज के लोगों पर सब से अच्छा प्रभाव उन्हीं लोगों का पड़ता है जो एक बार किसी कार्य में विफल हो जाते हैं। सम्भव है, किसी बड़े कार्य को आरम्भ करने वाला उद्योगी पुरुष बीच में ही मर जाय, पर उसको

मृत्यु दूसरों के लिये शिक्षाप्रद और उत्साह-जनक होती है। बहादुर सिपाही आगे बढ़ कर किले को घेरते, और लड़कर वीरगति प्राप्त करते हैं। पर उनके शरीर खाइयों में पड़ कर उन लोगों के लिये पुल का काम देते हैं जो विजयी होकर किले में प्रवेश करने के लिये आगे बढ़ते हैं।

वीर मनुष्य कार्य आरम्भ करके अपने शरीर को नष्ट कर सकता है, पर उसकी मृत्यु से नये तेज, नई शक्ति और नये उत्साह की सृष्टि होती । उसकी स्मृति उसके शरीर के साथ ही नष्ट नहीं हो जाती, बल्कि वह औरों के हृदय में आशा तथा शक्ति का संचार करती है। उत्साही और उद्योगी मनुष्य मार्ग में ही मर जाते हैं। इस प्रकार उद्देश्य चाहे विलम्ब से ही पूरा हो पर जिस समय वह पूरा होता है उस समय उसका पथ केवल सफलता प्राप्त करने वालों को ही नहीं मिलता जो आरम्भ या मध्य में उसके लिये उद्योग करते और बिना सफलता प्राप्त किये ही उसके लिये प्राण दे देते हैं। संसार में जितने बड़े-बड़े कार्य हुये हैं, वे सब साहस ही के हुये हैं। इस समय संसार में जितना शांति और सुख है, वह सब उद्योग और अध्यवसाय का फल है। संसार की वर्तमान शांति प्राचीन काल के भीषण युद्धों का फल और वर्तमान भीषण युद्ध भविष्य की शांति का जनक होगा। सत्य के पक्ष समर्थन के लिये साहस की बड़ी भारी आवश्यकता आ करती है । यदि हम देखें कि कोई मनुष्य अन्याय करता है तो उस समय हम साहस के अभाव के कारण उसे बुरा ही समझ कर चुप रह जाते हैं। उसे देख हमें कुछ क्रोध आता है और कुछ दुःख भी होता है। पर उस अन्याय के लिये हम कोई प्रयत्न नहीं करते, क्योंकि हममें उसका विरोध करने का साहस नहीं होता। यह न समझना चाहिये कि हममें उसका विरोध करने की शक्ति नहीं है, क्योंकि वास्तव में ऐसा बहुत कम

होता है। प्राय: अनेक अवसर ऐसे होते हैं जिन पर बल रखते हुये भी केवल साहस के अभाव के कारण हम चुपचाप बैठ रह जाते हैं। और ऐसे अवसर पर बल रहते हुए यदि हम केवल अपनी बलहीनत का विचार करने लग जांय तो हमारी गणना कायरों में होगी। पर यदि हम अपने बल का यथेष्ट ध्यान रख कर साहस करके उस अन्याय के प्रतिकार में लग जाँयगे तो हम सहज में ही किसी दीन की रक्षा करने के अतिरिक्त लोगों की सहानुभूति और प्रीति भी सम्पादित कर लेंगे और समाज को अन्याय से बचाकर दूसरों के लिये जो अच्छा आदेश खड़ाकर देंगे वह अलग। यदि हममें उस अन्याय के प्रतिकार के लिये पूरा-पूरा बल न हो तो भी हम साहस करके उसमें लग जाँय तो आस पास के देखने वालों में भी उत्साह और साहस का संचार हो जायगा। वह कमर कसकर हमारी सहायता के लिये आ जाँयगे और तब उस अन्याय का सहज में ही प्रतिकार हो जायगा। प्राचीन, मिथ्या और हानिकारक विश्वासों को दूर करके उनके स्थान पर नवीन, सत्य और लाभदायक विचारों का प्रचार करने में भो बड़े साहस और अध्यवसाय को आवश्यकता हुआ करती है। यदि बड़े बड़े धर्मात्माओं, वैज्ञानिकों और विद्वानों में साहस का अभाव होता तो आज दिन संसार इतना उन्नति और सभ्य न दिखाई पड़ता। जब किसी देश या समाज के अधिकांश भाग में कुविचारों का खूब प्रचार हो जाता है तब उसका विरोध करने के लिये बहुत बड़े साहस और अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। प्राचीन भारत में जब वैदिक धर्म अपने पूरे जोर पर जा पहुँचा तब यज्ञों और उनमें होनेवाले बलिदानों की सीमा न रही। जिस समय वैदिक याज्ञिक नित्य बलिदान के नाम से हजारों जीवों के प्राण लिया करते थे, कर्मकाण्ड के झगड़े और तरह-तरह के पाखंड बहुत बढ़ गये थे,

उस समय वैदिक धर्म की प्रबलता इतनी अधिक थी कि लोगों को किसी प्रकार उसका विरोध या निरोध करने का साहस ही न होता था। जो लोग तत्कालीन अन्यायों या अत्याचारों से दुखी थे वे भी नास्तिक कहलाये जाने के भय से उनका विरोध न कर सकते थे। पर कोई अवस्था अधिक समय तक नहीं ठहर सकती और विशेषत: ऐसी दूषित और हानिकारक अवस्था का अधिक समय तक ठहरना तो और भी कठिन होता है। उस समय भारत में एक ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए जिनका नैतिक साहस संसार के लिये आदर्श हो सकता है। वे महापुरुष भगवान बुद्ध थे। उन्होंने देश और समाज की दशा देखी। पशुओं और यहाँ तक की मनुष्यों पर बलिदान के नाम से होने वाले अत्याचारों का निरीक्षण किया और साहस कर के वह उनके प्रतिकार में लग गये। उन्होंने "अहिंसा परमो धर्म:" का उपदेश आरम्भ किया। पहले तो वैदिक ब्राह्मणों ने उनका विरोध किया, पर जब भगवान की देखा-देखी लोगों में साहस बढ़ता गया और लोग उनके अनुयायी होने लगे, तब वैदिक ब्राह्मणों का वश न चला। भगवान बुद्ध ने यज्ञों और बलिदानों का प्राय: अन्त ही करके छोड़ा और आज एशिया के निवासियों का बहुत बड़ा अंश उनका अनुयायी और बौद्ध है।

प्रश्न

१—संसार में शक्तिशाली और साहसी कौन गिना जाता है ?

२—सांसारिक जीवन में साहस और शक्ति क्यों आवश्यक हैं—स्पष्ट बताओ।

३—तुम्हें इस पाठ से क्या शिक्षा प्राप्त होती है ?

४—अपनी सहेली को साहस और अध्यवसाय के ऊपर एक पत्र लिखो।

५—निम्नलिखित शब्दों का अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो:—
तत्कालीन, अनुयायी, दूषित, वैज्ञानिकों तथा निषेध।

६—(अ) 'अहिंसा परमोधर्मः' का क्या भाव है?
(आ) किसी बहादुर व्यक्ति का उदाहरण देकर परिचय दो।

७—साहस और अध्यवसाय के लेखक की जीवनी संक्षेप में लिखो।

६—रामायण

[ले०—पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी]

[इनका जन्म सं० १९२१ है। ये दौलतपुर जिला रायबरेली के रहने वाले थे। ये हिन्दी-साहित्य के आचार्य थे। इन्होंने अपने जीवन का अधिक समय हिन्दी-साहित्य की सेवा में बिताया है। इनकी सेवाएँ साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी के लिये अधिक गौरव की वस्तु हैं। इन्होंने सरस्वती का सम्पादन अपने हाथ में लेकर उसके द्वारा एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव किया था। इन्होंने हिन्दी गद्य-साहित्य को परिमार्जित करने में अधिक सहायता दी। इन्होंने कई दर्जन पुस्तकें लिखी हैं। इनकी पुस्तकें हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति समझी जाती हैं। इनका हिन्दी के अतिरिक्त कई भाषाओं पर आधिपत्य था। अभी थोड़े दिन हुए, इनकी मृत्यु हो गई।]

काव्यों के दो बड़े भाग किये जा सकते हैं। एक वह, जिसमें केवल कवि ही की कथा हो, और दूसरा वह जिसका सर्व साधारण या एक बड़े सम्प्रदाय की कथा से सम्बन्ध हो। पहिली श्रेणी के काव्यों का यह मतलब नहीं, जिन्हें सिवा कवि के और कोई समझ ही न सके; क्योंकि यदि ऐसा हो तो वे केवल एक पागल की बकवास मात्र समझे जायँगे। ऐसे काव्यों से उन काव्यों का मतलब है, जिनमें कवि ने अपनी प्रतिभा के बल से निज के सुख-दुःख, निज की कल्पना और निज ही के जीवन के

अनुभवों द्वारा सारे मनुष्य-समुदाय के चिरन्तन हृदय-विकारों और हृदय के गुप्त रहस्यों को प्रकट किया हो। दूसरी श्रेणी के काव्य उन कवियों द्वारा रचे जाते हैं, जो अपनी रचनाओं द्वारा समग्र देश अथवा समग्र युग के भावों और अनुभवों को प्रकट करके अपने ग्रन्थों को मानव-जाति का जीवन-धन बना जाते हैं। इसी प्रकार के कवियों को महाकवि कहना चाहिये। देश भर अथवा जाति भर उन्हीं के द्वारा बोलती हुई मालूम पड़ती है। ऐसे महाकवियों का रचना किसी व्यक्ति-विशेष की रचना के समान नहीं होती। उनका रचनावन के वृहद् वृक्ष के सदृश होती है, जो अपने जन्म-स्थान की भूमि को अपनी सुविस्तृत छायां का आश्रय देता है। इसमें सन्देह नहीं कि शकुन्तला और कुमार-सम्भव में कालिदास की निपुणता का अच्छा परिचय मिलता है, परन्तु भारतवर्ष के लिये रामायण और महाभारत—पुनीत जाह्नवी और शिखर-राज हिमाचल के सदृश है। व्यास और वाल्मीकि तो केवल उपलक्ष मात्र हैं।

वास्तव में व्यास और वाल्मीकि किसी व्यक्ति-विशेष के नाम नही। ये नाम तो केवल किसा उद्देश से रख लिये गये हैं। इन दो बड़े ग्रन्थों के—इन दो महाकाव्यों के—जो भारतवर्ष इतने मान्य हैं, रचयिताओं के नाम का पता नहीं, कवि अपने ही काव्यों में बिलकुल छिप से गये हैं।

हमारे देश में रामायण और महाभारत जिस प्रकार के ग्रन्थ हैं, प्राचीन ग्रीस में उसी प्रकार का ग्रंथ इलियड् था। समस्त ग्रीस में उसका आदर और प्रवेश था। कवि होमर ने अपने देश और काल के कण्ठ में अपनी भाषा दान की थी। इसके वाक्य उसके देश के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज उठे और चिरकाल तक गूँजते रहे।

किसी आधुनिक काव्य में इतनी व्यापकता नहीं पाई जाती।

मिल्टन के "पैराडाइज़ लास्ट" नामक ग्रन्थ में भाषा का उत्कर्ष, प्रयुक्त छन्दों का गाम्भीर्य और रस की गम्भीरता क. कमी नहीं तो भी वह सारे देश का धन नहीं। वह तो केवल पुस्तकालयों के आदर की सामग्री मात्र है।

अतएव प्राचीन काव्यों को एक पृथक श्रेणी में रखना चाहिये। प्राचोन काल में वे देवताओं अ.र दैत्यों की तरह विशालकाय थे, परन्तु वर्तमान समय में उस श्रेणी के काव्य लुप्त हो गये हैं।

प्राचीन आर्य्य-सभ्यता की एक धारा योरप को गई, दूसरी भारत को आई। इन धाराओं से योरप और भारत—दोनों स्थानों में दो-दो महाकाव्यों का उत्पत्ति हुई। इन्हीं महाकाव्यों के द्वारा उन दोनों धाराओं की सभ्यता के इतिहास और सङ्गीत की रक्षा होती रही है।

मैं विदेशी ठहरा, इसीलिये ग्रीस के विषय में मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि उसने अपने दोनों महाकव्यों-द्वारा अपनी सारी प्रकृति को प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है या नहीं। परन्तु यह निश्चय है कि भारतवर्ष ने रामायण और महाभारत में कुछ बाकी नहीं रक्खा।

इसी कारण शताब्दियों पर शताब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी, भारतवर्ष में रामायण और महाभारत का वैसा ही प्रचार है। उनका सोता ज़रा भी शुष्क नहीं हुआ। प्रति दिन, घर-घर में, गाँव गाँव में उनका पाठ होता है। बनिये की दूकान में और राजा के महल में—सब जगह—उनका समान आदर है। धन्य हैं वे दोनों माहकवि! उनके नाम तो काल के महप्रशस्त विस्तार में लुप्त हो गये, किन्तु उनकी वाणी आज तक करोड़ों नर-नारियों के मनों में भक्ति और शान्ति की ऐसी

प्रबल लहरों को उत्थित करती हैं, जो हज़ारों वर्ष की उत्तमोत्तम मिट्टी लाकर आधुनिक भारत के हृदय को उर्वरा करती है।

इसलिये रामायण और महाभारत को केवल महाकाव्य।न कहना चाहिये। ये इतिहास भी हैं। ये किसी समय अथवा घटना विशेष का इतिहास नहीं, ये भारतवर्ष के चिरकाल का इतिहास हैं। अन्य इतिहासों में, समय-समय पर, परिवर्तन होता है, परन्तु इन इतिहासों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारतवर्ष को सारी साधना, आराधना, और कल्पना का इतिहास इन दोनों महाकाव्य रूपी प्रसादों के चिरकाल रूपी सिंहासन पर विराजमान है।

इसीलिये रामायण और महाभारत की समालोचना का आदर्श अन्य काव्यों को समालोचना के आदर्श से भिन्न होना चाहिये। राम का चरित उच्च था या नीच और लक्ष्मण का चरित भला लगता है या नहीं—केवल इतनी आलोचना यथेष्ट नहीं है। समालोचक को श्रद्धापूर्वक इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि समस्त भारतवर्ष सहस्रों वर्ष से इन महाकाव्यों को किस दृष्टि से देखता आता है।

यहाँ से हमें इस बात पर विचार करना है कि वह कौन सा सन्देश है जो रामायण द्वारा भारतवर्ष को प्राप्त होता है और वह कौन सा आदर्श है, जो रामायण भारतवर्ष के आगे रखती है। साधारणतः लोगों ने समझ रक्खा है कि वीर रस प्रधान काव्यों का ही नाम एपिक है। इसका कारण यह है कि जिस देश और जिस काल में वीर रस का गौरव प्रधान रहा है; उस देश और उस काल के महाकाव्य भी अवश्य ही वीर रस से पूर्ण होंगे। रामायण में यथेष्ट मार-काट का वर्णन है। राम में भी असाधारण बल था; किन्तु तो भी रामायण में जो रस प्रधान है, वह वीर रस नहीं। रामायण में शारीरिक बल-प्राधान्य प्रकट

नहीं किया गया—युद्ध की घटनाओं ही का वर्णन करना उसका मुख्य विषय नहीं।

यह भी सच नहीं कि इस महाकाव्य में केवल किसी देवता की अवतार-लीलाओं का वर्णन है। कवि वाल्मीकि ने राम को अवतार नहीं माना; उन्होंने राम को मनुष्य ही माना है। हम यहाँ संक्षेप में कह देना चाहते हैं कि यदि कवि ने रामायण में नर-चरित्र के बदले देव-चरित्र का वर्णन किया होता तो रामायण के गौरव का बहुत कुछ ह्रास हो जाता। राम-चरित्र इसलिये महिमान्वित है कि वह मनुष्य-चरित्र से परे नहीं। रामायण में ऐसे सद्गुणों से पूर्ण पुरुषों का कथा है, जिनसे विभूषित नायक का वाल्मीकि को अपने काव्य के लिये ज़रूरत थी। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में वाल्मीकि नारद से सारे सद्गुणों से सम्पन्न नायक का नाम पूछते हैं। उत्तर में नारद कहते हैं—"देवताओं में ऐसा कोई नहीं, मनुष्यों में राम ही सब गुणों से युक्त हैं"। इसीलिये रामायण में किसी देवता की कथा नहीं; उसमें नर-कथा का ही प्राधान्य है। किसी देवता ने मनुष्य का अवतार नहीं लिया। राम नायक मनुष्य ही अपने सद्गुणों के कारण देवता बन गया। महाकवि ने मनुष्यों के परमादर्श की स्थापना के लिये ही इस महाकाव्य को रचा था। तब से आज पर्य्यन्त भारतवासी बड़े आग्रह के साथ मनुष्य के इस आदर्श चरित्र वर्णन को पढ़ते हैं।

रामायण में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें एक ही घर की कथा वृहद्रूप से वर्णन की गई है। पिता-पुत्र में भाई-भाई में, पति-पत्नी में जो धर्म-बन्धन होता है—जो प्रीति और भक्ति का सम्बंध होता है—वह इसमें इतना ऊँचा दरशाया गया है कि सहज ही में महाकाव्य के अनुरूप कहा जा सकता है। अन्य महाकाव्यों का गौरव उनमें वर्णन किये हुए विजय, शत्रु-

दमन और दो विरोधी पक्ष का आपस में रक्तपात आदि घटनाओं के वर्णन से होता है; परन्तु रामायण की महिमा राम-रावण के युद्ध के कारण नहीं। इस युद्ध-घटना का वर्णन तो केवल राम और सीता के उज्ज्वल दाम्पत्य प्रेम का दर्शन कराने के लिये है। रामायण में केवल यही दिखाया गया है कि पुत्र का पिता की आज्ञा का पालन, भाई का भाई के लिये आत्म-त्याग, पत्नी का पति के प्रति निष्ठा और राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य कहाँ तक हो सकता है। किसी देश के महाकाव्य में इस प्रकार व्यक्ति-विशेष का घरू सम्बन्ध इतना वर्णनीय विषय नहीं समझा गया है।

पूर्वोक्त बातों से केवल कवि का ही परिचय नहीं मिलता, सारे भारतवर्ष का परिचय मिलता है। इससे यह मालूम होता है कि भारत में गृह-धर्म कितने महान् समझे जाते थे। इस महाकाव्य से यह बात स्पष्टतापूर्वक सिद्ध होती है कि हमारे देश में गृहस्थाश्रम का स्थान कितना ऊँचा है। गृहस्थाश्रम हमारे ही सुख और सुभीते के लिये नहीं; गृहस्थाश्रम सारे समाज को धारण करनेवाला है। वह मनुष्य के यथार्थ भावों को दीप्त करता है। वह भारतवर्षीय समाज की नींव है। रामायण उसी गृहस्थाश्रम के महत्व को दिखानेवाला महाकाव्य है। कष्ट और बनवास के दुःख दिखाकर रामायण इसी गृहस्थाश्रम को और भी अधिक गौरव दान करता है। कैकेयी और मन्थरा की कुमन्त्रणा ने अयोध्या के राज-गृह को विचलित कर दिया। उस समय जो दुर्भेद्य दृढ़ता देखी गई, उसका रामायण में अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। शारीरिक शक्ति को नहीं, विजय की अभिलाषा को नहीं, राजनीतिक महत्व को नहीं—किन्तु शान्ति-युक्त गृह-जीवन को ही रामायण ने करुणा के अश्रुओं से स्नान कराकर वीर रस के सिंहासन पर ला बिठाया है।

प्रश्न

१—काव्य कितने भागों में विभक्त किए जा सकते हैं ? हर एक भाग की व्याख्या करो।

२—किस प्रकार के कवियों की गिनती महाकवियों में की जा सकती है ?

३—इस वाक्य की स्पष्ट व्याख्या करो—
कवि अपने ही काव्यों में बिलकुल छिप से गये हैं ?

४—रामायण किस प्रकार का महाकाव्य है? तुम उसके सम्बन्ध में क्या जानते हो ?

५—इस लेख के लेखक के आधार पर रामायण की सूक्ष्म दृष्टि से आलोचना करो।

६—रामायण की विशेषताओं का वर्णन अपनी भाषा में करो।

७—समास विग्रह करो—
मनुष्य-समुदाय, विशालकाय, महिमान्वित, राजगृह।

८—चरित्र चित्रण करो—
तुलसीदास, वाल्मीकि

९—पद व्याख्या करो—
वीर रस के सिंहासन पर ला बिठाया है।

१०—लव-कुश का राम-दर्शन

[ले०-रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०]

[आपका जन्म कायस्थ कुल में हुआ था। आप हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। आप उर्दू, फ़ारसी, हिन्दी और संस्कृत भाषाओं के अच्छे विद्वान थे। हिन्दी की आपने बड़ी सेवा की। आप की रचनाएँ

हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। आपकी कविताएँ अवधी भाषा में मिलती हैं। आपके निबन्ध बड़े उत्तम और सुरुचिपूर्ण होते हैं। आपने नाटक भी लिखे हैं।]

[स्थान—वाल्मीकि के आश्रम के पास मैदान]

(रामचन्द्र रथ पर खड़े हैं, लव और चन्द्रकेतु दंडवत करते देख पड़ते हैं)

राम—(पुष्पक से उतर के)

चन्द्रकेतु रविकुल के चन्दा, आउ लागि गर, देहु अनन्दा॥
लहि तव अङ्ग परस जनुपाला, बुझैं आज मो चित्त को ज्वाला॥

चन्द्रकेतु—मैं प्रणाम करता हूँ।

रामचन्द्र—(उठा के स्नेह से गले लगा के) भैय्या, बहुत अच्छे रहे। तुम्हारो दिव्य अस्त्र धरे देह तो कुशल से हैं?

चन्द्रकेतु—जी सब कुशल है विशेष कर आश्चर्य के काम करने वाले सुन्दर लव के मिलने से मैं अब विनती करता हूँ कि चाचाजी इस बड़े वीर को मेरे बराबर वरन् मुझसे बढ़कर कृपा से देखें।

राम—(लव को देख के) बड़े आनन्द की बात है कि भैय्या के मित्र की आकृति बड़ी सुहावनी है।

अस्त्र वेद यह रूप जगत रक्षा हित धारा।
वेद बचावन क्षत्रिय धर्म लीन्ह अवतारा॥
सामर्थ्यन को उदय गुनन को मानहुँ ढेरो।
भई प्रगट जनु राशि पुण्य के काजन केरो॥

लव—(आपही आप) इस महापुरुष का रूप गम्भीर है।

अभयदान और भक्ति को मानहुँ एक आधार।
चलन धरनि अरु धर्म कर यह मानो अवतार॥

बिनस्यो सकल विरोध अरु उपजत हिए अनन्द ।
विनय नवावत सीस सम क्रोध तेज करि मन्द ॥
यहि लखि परवि सो भयो क्यों जानों कुछ नाहिं ।
तीरथ की सी होत है महिमा ऐसन माहिं ॥

राम—यह क्या है जो सब दुख अकस्मात दूर हुये जा रहे हैं और चित्त में किसी निमित्त से स्नेह की धारा सी बहा आ रही है? यह तो बात सिद्ध है कि स्नेह सदा निमित्त ही से होता है ।

अन्तःकरनहिं के मिले मेल होत जग माहिं ।
रहै बाहरी बात के प्रीति आसरे नाहिं ॥
विकसत सदा सरोज लखि उवत दिनेस अकास ।
चन्द्रकांत मनि द्रवत नित लखि चन्द्रमा उजास ॥

लव—चन्द्रकेतु, ये कौन हैं ?

चन्द्रकेतु—भाई, चाचा जी तो हैं ।

लव—तुम तो हमको मित्र मानते हो तो हमारे भी हुए, पर रामायण की कथा में तो चार जने हैं; जिन्हें तुम ऐसा कह कर सम्बोधित करते हो । यह उनमें से कौन हैं ?

चन्द्रकेतु—जेठे चाचा ज हैं ।

लव-(आनन्द से) अरे क्या श्री रघुनाथ जी हैं । आज का दिन धन्य है जो इनका दर्शन हुआ (विनय और कौतुक से देख के) चाचा जी वाल्मीकि का चेला लव आपको प्रणाम करता है

राम—(स्नेह से) आओ भैय्या, यह विनय रहने दो मुझसे और अच्छी तरह लिपट जी ।

परसत पंकजदल सरिस तव शरीर सुकुमार ।
चन्दन सम शीतल लगत, मोहिं सुख देत अपार ॥

लव-(आप ही आप) यह तो मुझ पर इतना स्नेह रखते हैं और मैंने बेसमझे बूझे इनसे बैर किया और इनसे लड़ने को

हथियार उठाया और लड़ बैठा। (प्रकाश) चाचा जी, लव का लड़कपन जी में न लाइएगा।

राम—भय्या, तुमने कौन सा अपराध किया?

चन्द्रकेतु—घोड़ों के रखवारों के मुँह से चाचा जी के प्रताप का बखान सुनकर वीरता दिखाई।

राम—अजी यह तो क्षत्रिय का अलंकार है।

तेजस्वी नहिं सहत और कर तेज प्रसारा।
यह सुभाव तिनकेर न कुछ कृत्रिम व्यवहारा॥
नित प्रति किरन पसारि तपत दिन नाथहिं जानी।
यदपि न पाथर आगि उठत वरि मानि गलानी॥

चन्द्रकेतु—चाचा जी इस वीर का तो इसमें कोप करना भी अच्छा लगता है। परन्तु इनके चलाये जृम्भक हथियार से सेना चारों ओर बेसुध पड़ी है।

राम—(देखके) भैय्या लव, हथियार हटा लो और तुम भी चन्द्रकेतु। अब लड़ाई का तो काम न रहा। सिपाहियों से कह दो आराम करे।

लव—जो चाचाजी की आज्ञा।

चन्द्रकेतु—जो आज्ञा।

लव—हथियार उठा लिये।

राम—इन हथियारों को तो हमने सुना है कि मंत्र से चलाये जाते हैं और मंत्र ही से खींचे जाते हैं।

लव—उर्मिला का लड़का चन्द्रकेतु बड़ा सुजन है, वह हमको मित्र करके मानता है, इसी नाते से वह राजा भी हमारे चाचा होते हैं।

कुश—ऐसे क्षत्रियों से हाथ जोड़कर मिलना उचित भी तो है।

लव—देखिये यही महापुरुष हैं। उनके चरित्र कैसे लोक के ऊपर हुए हैं और उनका रूप कैसा गम्भीर और अनुभव कैसा उत्तम है?

प्रश्न

१—लव और राम की सेना में लड़ाई किस बात पर हुई थी?

२—रामचन्द्र जी के हृदय में लव को देखकर क्या भाव उठे थे?

३—नीचे के शब्दों के अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करोः— दिव्य अस्त्र, कौतुक, महिमा, आकृति।

४—लव और कुश का चरित्र-चित्रण करो।

५—इस पाठ की कथा संक्षेप में लिखो।

११—पैसे की शिकायत

[ले—श्री० रवीन्द्रनाथ टैगोर]

[श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म सन् १८३० ई० में हुआ था। आप बाबू द्वारकानाथ के पौत्र और सुप्रसिद्ध महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र थे। आप बाल्यकाल से ही बड़े कुशाग्रबुद्धि थे और १५ वर्ष की अवस्था में ही गद्य-पद्य दोनों ही अच्छी तरह लिखने लगे थे। आपने सन् १९०१ में जिसे आजकल शान्ति निकेतन कहते हैं बोलपुर में एक विद्यालय की स्थापना की। वही शान्ति निकेतन आज-कल भारतवर्ष में विशेष शैली की विद्या को प्रचार कर प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है। वहाँ दूसरे देशों के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते हैं। वहाँ पर विशेषता यह है कि प्राचीन रहन-सहन-आचार-विचार की शिक्षा मिलती है। आप को सदैव देश की उन्नति का ध्यान रहता था। आप बड़े देश सुधारक, परोपकारी और अध्ययनशील

व्यक्ति थे। जब आप की मृत्यु का समाचार लोगों ने सुना तब सबने बड़ा शोक मनाया। आप की पुस्तकों में गीताञ्जलि, साधना, डाकघर, गोरा, घर और बाहर अधिक प्रसिद्ध हैं।]

प्रयत्न और भाग्य में से कौन प्रधान और प्रबल हैं, यह निश्चित नहीं हो सका। कुछ लोग तो प्रयत्न या उद्यम को सब कुछ मानते हैं, किन्तु कुछ भाग्य-विधान को ही मुख्य कहते हैं। कुछ का कहना है कि उद्योग अथवा प्रबल पुरुषार्थ के कारण भाग्य का, यदि वह कुछ है, विधान बनता है, और बहुतों का मत है कि भाग्य के सामने कर्म की कुछ भी नहीं चलती। जैसा कुछ भाग्य-विधान होता है, वैसा ही मनुष्य को करना और विचारना पड़ता है। जो भी सत्य हो, संसार में भाग्य का कौतुक अवश्य ही देखा जाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति बड़ा ही उद्यमी और परिश्रमी है, किन्तु दुर्भाग्य के कारण उसे उसका यथेष्ट फल नहीं प्राप्त होता।

सुनते हैं, संसार में क्षति-पूर्ति का एक नियम है। उस नियम का अर्थ यही है कि जिसके पास एक वस्तु का अभाव है, उसके पास प्रायः दूसरी वस्तु को अधिकता रहती है। आफिस में भी इसके ज्वलन्त प्रमाण विद्यमान हैं। मेरा वेतन जितना ही न्यून है, परिश्रम उतना ही अधिक और शिकायत भी विशेष है।

संसार का यह नियम किसी के लिए कितना ही आनन्ददायक क्यों न हो, परन्तु मेरे लिये तो वैसा सौख्य-प्रद नहीं जान पड़ता। केवल लाचारी से सब कुछ सहता हूँ, किंतु जिस दिन मेरे ऊपर के दरजे की एक जगह रिक्त हुई, बस उसी दिन बाहर से एक कच्ची आयु के बालक को बुला उस पर नियुक्त करके मेरी वृद्धि रोक दी गई। उस दिन मेरे मनोदुःख की

सीमा न रही। चुपचाप बस सीधे घर ही चला गया; उस दिन जल-पान तक न किया। बच्चे को सरदी हुई है, इस कारण स्त्री को खूब फटकारा, वह रोने लगी। मैं तनिक सवेरे ही चारपाई पर जा लेटा। पड़े ही पड़े सोचने लगा हाय रे पैसे! तेरे लिये कितना अपमान सह रहा हूँ!

स्त्री तो रुष्ट होकर मेरे समीप न आई, किन्तु निद्रा देवी कब मानने वाली थीं, वह चुपचाप आ गईं। एकाएक मैंने देखा मैं एक पैसा हूँ; कुछ आश्चर्य्य न मालूम हुआ। कब, किस पुरानी टकसाल से निकला, यह भी याद नहीं। सिर्फ इतना ही ज्ञात था कि ब्रह्मा जी के पैर से जैसे शूद्र की उत्पत्ति हुई, उसी तरह टकसाल के अत्यन्त छोटे विभाग से मेरा जन्म हुआ है।

उस दिन अखबार में एक विज्ञापन छपा था कि चवन्नियों और दुअन्नियों का एक बड़ा अधिवेशन होगा। कोई काम तो था ही नहीं, कुतूहल-वश लुढ़कते-लुढ़कते मैं भी उस सभा में पहुँचा और दीवार से सटकर एक कोने में बैठ गया।

सुकुमारी तन्वंगी सहधर्मिणी दुअन्नियों को बड़े यत्न से वाम भाग में कर चमकीली चवन्नियों ने, झुँड के झुँड में आकर सभा-गृह को चारों ओर से समावृत कर लिया। उनमें से कोई तो रहती हैं कोट के पाकेट में, कोई चमड़े की थैली में और कोई टीन की पिटारी में। भाग्य के दोष से कोई-कोई हम लोगों की पड़ोसी भी बन हमारे गाँव में बटुये के भीतर भी बन्द रहकर कालक्षेप करती हैं।

उस दिन का आलोच्य विषय यही था, "हम पैसे से बिल्कुल अलग होकर रहना चाहती हैं, क्योंकि वह बड़ा ही तुच्छ है।" दुअन्नियाँ बड़े उच्च स्वर से बोल उठीं—"उनका रूप भद्दा है, रंग भी ताँबे का है और बास भी अच्छी नहीं।" मेरे पास एक दुअन्नी बैठी थी, उसने कुछ तिरछे भाव से बैठ नाक-मुँह सिकोड़ी।

उसके पार्श्ववर्तिनी एक चवन्नी ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। मैं तो मारे लज्जा के सिकुड़ कर पानी ही सा हो गया। मैंने अपने मन में कहा—मेरे ही आठ और सोलह को खाकर तुम्हारी यह चमक दमक निखरी-बिखरी है। इसके लिये क्या कुछ भी कृतज्ञता नहीं? मिट्टी के तले तो हमारा और तुम्हारा दोनों ही का स्थान समान ही था!

उस दिन प्रस्ताव हुआ कि उज्ज्वल मुद्रा और मलिन मुद्रा के लिये अलग-अलग टकसाल बन। यद्यपि एक ही महाराज की मूर्ति, एक ही राजा का चेहरा दोनों के ऊपर अंकित है तथापि इस एक चिह्न से हम किसी तरह उनकी बराबरी नहीं स्वीकार करना चाहतीं, हम उनसे सर्वथा बिलग ही होकर किसी बटुए, थैली या बक्स में रहेंगी। यहाँ तक कि चवन्नी दुअन्नी को भुना कर पैसा और पैसों को भुना कर चवन्नी-दुअन्नी ली जांय। इस अपमानजनक कानून को भी बदलवाना चाहती हैं। समता के गौरव को हम अस्वीकार नहीं करतीं किन्तु उसकी भी एक सीमा होती है। जैसे गिन्नी और मुहर में, वैसे ही चवन्नी-दुअन्नी में भी सादृश्य है दोनों ही एक साम्य सीमा के अन्तर्गत हैं, किन्तु इससे क्या चवन्नी दुअन्नी के साथ नीच पैसा भी रहेगा। सभी चिल्ला कर बोल उठीं—"कभी नहीं, कभी नहीं।" दुअन्नी का तीव्र कण्ठ सबसे ऊंचा सुना गया।

जिस खान में मेरी प्रथम उत्पत्ति हुई थी, उसी खान में प्रवेश करने की इच्छा से मैंने वसुन्धरा से फटने का अनुरोध किया, किन्तु वसुन्धरा ने यह अनुरोध न माना। मैं दीवाल में चिपक कर लाल हो ज्यों का त्यों ही बैठा रह गया।

इस समय चमक-दमक से परिपूर्ण एक नई अठन्नी ने चवन्नी-दुअन्नी की सभा में आकर प्रवेश किया। उसे देख कर

सभी हड़बड़ा उठीं। वह बड़ा तेजी से वक्तृता देने लगी; झन-झन शब्द से चारों ओर करतल-ध्वनि हुई।

किन्तु मैंने कान देकर सुना, वक्तृता चाहे जैसी हो, पर आवाज़ पहले ढङ्ग की बिलकुल न थी, इससे मन में बड़ा संदेह हुआ। जब सभा भंग हुई तब मैं धीरे-धीरे लुढ़कता हुआ बड़े साहस से उसके शरीर पर जा गिरा। टन से आवाज़ हुई। वह आवाज़ बिलकुल देशी थी और गन्ध भी हमारी सजाति के सदृश थी। वह अत्यन्त क्रोध करके बोली—"तुम कहाँ के असभ्य हो?" मैंने कहा—"बाबू, जहाँ के आप हैं वहीं का मैं भी हूँ।" बात खुल गई। छोकरा, हमारा ही एक निम्न श्रेणी का कुटुम्बी—पैसा—था, कहीं से पारा लगा कर आ गया था।

उसके रूप-रंग को देखकर खिल खिला कर हँस पड़ा। हँसी के शब्द से जाग उठा, अब मैंने देखा तो स्त्री समीप ही पड़ी पड़ी रो रही है। इधर-उधर की दो-एक बातें कहकर मैंने उसे तुरन्त प्रसन्न कर लिया। स्वप्न की बातें उसे आदि से अन्त तक सुना डालीं। छद्म वेशी छिपा नहीं रहता, तो भी मैं चाहता हूँ कि कल से मैं भी पारा लगा कर आफ़िस जाऊँ।

स्त्री—पारा लगाने की अपेक्षा पारा खाकर मर जाना भला है।

प्रश्न

१—इस पाठ के आधार पर एक मनोरञ्जक कहानी लिखो।

२—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो:-
घनिष्ट, टकसाल, तन्वंगी और छद्म।

३—इस पाठ का सारांश अपनी भाषा में लिखो।

४—उक्त पाठ के प्रथम अनुच्छेद में से 'उद्यम, भाग्य, परिश्रम और यथेष्ट शब्दों का पदान्वय करो।

५—उक्त कहानी का क्या कोई मुख्य तात्पर्य है ? यदि है तो लिखो ।

६—लेखक की जीवनी संक्षेप में लिखो ।

१२—महारानी पद्मिनी

[पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न']

[पं० हरिशंकर शर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और कवि हैं । हिन्दी साहित्य में उनकी रचनाओं का एक विशिष्ट स्थान है । वह आर्य संस्कृति के पोषक हैं । उनकी रचनाओं में हमें भारतीय विचार परम्परा के दर्शन होते हैं । उनकी भाषा सुव्यवस्थित, संयत और भावानुकूल होती है । प्रस्तुत लेख में उन्होंने महारानी पद्मिनी का चरित्र अंकित किया है ।]

मेवाड़ का इतिहास जहाँ बहादुर राजपूतों के वीर-वर्णन से पूर्ण है, वहाँ उसमें सती साध्वी वीराङ्गनाओं के चारु-चरित्र की भी पर्याप्त चर्चा है । जिस समय वीर राजपूतनियाँ अपने पति और पुत्रों के रणशायी हो जाने पर असहाय हो जाती थीं, उस समय यवन शत्रुओं के पापपूर्ण पंजे में पड़ जाने के भय से वे जीते जी चिता चुन कर उसमें प्रसन्नतापूर्वक भस्म हो जाया करती थीं । एक-दो, दस-पाँच नहीं, मेवाड़ के इतिहास में ऐसी सैकड़ों राजपूतनियों के आदर्श चरित्र पाये जाते हैं । यहाँ हम विशेष विस्तार न कर केवल महारानी पद्मिनी के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिख देना आवश्यक समझते हैं ।

प्रताप से बहुत पहले अर्थात् १२७५ ई० में राणा लक्ष्मणसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे । अभिषेक के समय लक्ष्मणसिंह की अवस्था बहुत थोड़ी थी । अतएव राज-काज-संचालन का

सारा भार उनके चचा भीमसिंह के सुपुर्द किया गया। भीमसिंह बड़े ही प्रबन्ध-पटु तथा पराक्रमी पुरुष थे। वह अपने भतीजे की सफलता के लिए अधिक से अधिक प्रयत्नशील रहते थे। भीमसिंह सौभाग्यशाली भी बड़े थे। उनका विवाह, सुप्रसिद्ध सिंहलद्वीप निवासी हामीरशंक की कन्या पद्मिनी के साथ हुआ था। पद्मिनी जितनी सुन्दरी थी उतनी ही गुणवती और सुशील भी थी। उसके सौन्दर्य की चर्चा सारे देश में फैली हुई थी। राजा से लेकर रंक तक सभी उसके रूप-गुण की सराहना करते थे। उस समय कितने ही लोग ऐसे भी थे जो पद्मिनी के कारण भीमसिंह से ईर्ष्या करने लगे थे। इन ललना-लोलुपों में मुख्यतम् तत्कालीन यवन सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी था।

जब अलाउद्दीन को, पहले पहल, सर्वाङ्ग सुन्दरी पद्मिनी के अपूर्व सौन्दर्य का सुसंवाद मिला तब व्याकुल हो वह उसके प्राप्त करने के लिए पागल की तरह प्रयत्न करने लगा। पद्मिनी को पाने की दृढ़ आशा से अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौर पर चढ़ाई कर दी और बहुत दिनों तक उसके सारे रास्ते रोक लिए। लूट-खसोट और मारकाट भी हुई, परन्तु अलाउद्दीन का मनोरथ सफल न हुआ। पद्मिनी को प्राप्त करना तो बड़ी बात थी, बादशाह उसके दर्शन भी न कर सका। उस समय अलाउद्दीन का मुख्य उद्देश्य चित्तौर को विजय करना नहीं, बल्कि रानी पद्मिनी को प्राप्त कर अपनी विषय-वासना तृप्त करना था। जब अलाउद्दीन का कोई दाँव न चला तो उसने स्पष्ट घोषणा कर दी कि अगर भीमसिंह अपनी रूपवती रानी पद्मिनी को दे दें तो मैं मेवाड़ छोड़कर तुरन्त ही स्वदेश वापस जा सकता हूँ।

अलाउद्दीन का यह अनुचित प्रस्ताव सुनकर समस्त राजपूत क्रुद्ध हो गये। उनकी नाड़ियों का उष्ण रक्त एक दम उबल उठा—'जिस घोर घृणित कार्य के लिए कोई साधारण आदमी

भी तैयार न होगा उसे बादशाह अपने आतंक द्वारा स्वाभिमान सम्पन्न राजपूतों से कराना चाहता है! इससे अधिक उसकी अधमता और क्या हो सकती है? हम क्षत्रिय हैं, हमारे शरीर में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का रक्त प्रवाहित है। क्या हम लोग जीते जी कभी बादशाह के इस मूर्खतापूर्ण अनुचित प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते हैं? कदापि नहीं, प्राण रहते हुए, यह नीचतापूर्ण कार्य हमसे हर्गिज न होगा।'

अलाउद्दीन राजपूतों के ऐसे अटल विचारों से निराश हो गया। अतः अन्त में उसने कहा 'अगर मुझे एक दर्पण-द्वारा पद्मिनी का प्रतिबिम्ब ही दिखा दिया जायगा तो भी मैं सन्तुष्ट होकर वापस लौट जाऊँगा। राजपूतों को अलाउद्दीन की इस बात को स्वीकार कर लेने में कोई हानि न दिखाई दी। उन्होंने भीमसिंह को परामर्श दिया कि यदि पद्मिनी का प्रतिबिम्ब बादशाह को दिखा दिया जाए तो सहज ही में उससे पीछा छूट सकता है। साथ ही उसकी परछाई दिखाने में किसी प्रकार के नैतिक दोष की भी आशंका नहीं है। भीमसिंह ने अपने सरदारों की प्रार्थना स्वीकार कर बादशाह को पद्मिनी का प्रतिबिम्ब दिखाना निश्चित कर लिया।

एक सुविस्तीर्ण मैदान में राजपूतों की छावनी पड़ी थी, संरक्षक सेना का पर्याप्त प्रबन्ध था, चारों ओर से स्थान घिरा हुआ था। अलाउद्दीन अपने अङ्ग-रक्षकों सहित राजपूत-शिविर में आया। भीमसिंह ने उसका खूब स्वागत-सत्कार किया। राजकीय आतिथ्य के उपरान्त बादशाह एक बड़े भवन में ले जाया गया और वहाँ विशाल दर्पण में पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देखकर उसके हर्ष का पारावार न रहा। थोड़ी देर बाद अलाउद्दीन शिष्टाचार वश भीमसिंह से इस अपराध की क्षमा मांगता हुआ विदा हुआ। जिस समय बादशाह राजपूत-शिविर से अपनी छावनी की ओर

जाने लगा उस समय भीमसिंह भी ड्योढ़ी तक उसे पहुँचाने के लिए आया। इतने ही में पठानों का एक गुप्त दल दिखाई दिया जिसने बादशाह के संकेत से भीमसिंह को पकड़ लिया। भोले-भाले भीमसिंह को अलाउद्दीन की इस छल-छिद्रता का पता नहीं था, इससे उसने उसके माया-जाल में फँसकर, सहज ही में अपनी स्वाधीनता नष्ट कर दी। भीमसिंह के कैद हो जाने से राजपूतों की चिन्ता का ठिकाना न रहा; वे बहुत सोचने पर भी उसके उद्धार का उपाय न सोच सके। भीमसिंह के पकड़े जाने का समाचार सर्वत्र बिजली की तरह फैल गया। रानी पद्मिनी ने यह अशुभ संवाद बड़े दुःख के साथ सुना।

उधर यवन-सम्राट् ने घोषणा कर दी कि जब तक रानी पद्मिनी नहीं मिलेगी तब तक भीमसिंह का उद्धार नहीं हो सकता और न चित्तौर से सेना हटाई जा सकती है। पद्मिनी बड़ी बुद्धिमती थी। उसने अपने पति के उद्धार का उपाय स्वयम् सोचा और सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध कर दी कि वह अलाउद्दीन को आत्म-समर्पण करके अपने पति भीमसिंह का छुटकारा कराने के लिए तैयार है। पद्मिनी की इस सूचना से जहाँ शत्रुदल में आनंद की वर्षा होने लगी, वहाँ राजपूत-वीर चिन्ता-सागर में निमग्न हो गये और रानी की गति-विधियों को बड़ी चिन्तापूर्ण दृष्टि से देखने लगे।

पद्मिनी ने अपने पिता के राज्य से गोरा और बादल नामक दो वीरों को बुलाया। यह दोनों चचा भतीजे बड़े बहादुर तथा युद्ध कला में निपुण थे। पद्मिनी ने गोरा और बादल दोनों वीरों से एकान्त में परामर्श किया कि राजपूत कुल को कलङ्कित किये बिना शत्रु के हाथ से राणा भीमसिंह जी का उद्धार किस प्रकार हो सकता है? बहुत सोच विचार के बाद कार्य-विधि निश्चित की गई और अलाउद्दीन के पास यह संदेश भेजा गया कि रानी पद्मिनी ने अपने पति के उद्धार के लिए अपनी

इच्छानुसार आपके आगे आत्मसमर्पण करना निश्चित कर लिया है। परन्तु एक बात विशेष रूप से विचारणीय है। अर्थात् पद्मिनी कोई साधारण स्त्री नहीं है, जो महलों से अकेली आपके पास आ जायगी। उसके चिर-वियोग से उसकी सैकड़ों सखियों तथा राजपूतनियों को घोर दुख होगा; सम्भव है कितनी ही सहेलियाँ उसे विदा करने के लिये आपके शिविर तक भी आवें। ऐसी दशा में आपको किसी प्रकार की आपत्ति न होनी चाहिये, बल्कि इस बात की उचित व्यवस्था करनी चाहिए कि पद्मिनी के साथ आनेवाली स्त्रियों का किसी प्रकार अपमान न हो और बड़े आदर से उसे आपके यहाँ पहुँचाकर सकुशल वापस चली जायँ। इन राजपूतनियों के पास आपके किसी सिपाही या सर्दार का रहना बहुत अपमानजनक होगा। आप ऐसी व्यवस्था करें कि जिस समय पद्मिनी अपनी सहेलियों समेत आवे उस समय पर्दे का पूरा प्रबन्ध रहे और कोई मनुष्य उस समय उधर होकर न निकलने पावे।' इस सन्देश को सुनकर बादशाह खुशी के मारे फूल उठा। उसने मार्ग से सारी सेना हटा ली और दूर जा कर छावनी डालने की आज्ञा दी और पद्मिनी को कहला भेजा कि जिस प्रकार आप कहती हैं, उसी प्रकार सब प्रबन्ध हो जायगा। आपके साथ आनेवाली समस्त राजपूतनियों की प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रक्खा जाएगा और उनकी बेपर्दगी हरगिज न होने पावेगी। इस बात का आप पूरा विश्वास रक्खें।

अलाउद्दीन के आगे पद्मिनी के आत्मसमर्पण करने की तिथि आई। सात सौ पालकियां मँगाई गईं और प्रत्येक पालकी में अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित एक-एक राजपूत सिपाही छिपकर बैठ गया। इन पालकियों को ले जानेवाले भी वीर योद्धा ही थे। इन वीरों ने अपने-अपने हथियारों को छिपाकर वेश बदल लिया था,

और कहारों की तरह पालकियों में नीचे लगे हुये थे। इस प्रकार एक-एक पालकी के साथ सात-सात सैनिक कहार थे। पर्दों से ढकी हुई सात सौ पालकियां मुसलमानों की छावनी की ओर चलीं।

सर्वत्र धूम मच गई कि भीमसिंह की रानी पद्मिनी ने अलाउद्दीन की बेगम बनना स्वीकार कर लिया है। मुसलमानों को खुशी का ठिकाना न था। जो राजपूत इन पालकियों के गुप्त रहस्य को न जानते थे उनकी गरदन लज्जा के भार से झुकी जाती थी और मुँह से यही उद्‌गार निकल रहे थे "हे विधाता तैंने पद्मिनी की कैसी विपरीत बुद्धि कर दी जो उसने अपने जातीय गौरव तथा कुल-मर्यादा को मिट्टी में मिलाकर यवन बादशाह की अर्द्धाङ्गिनी बनना स्वीकार कर लिया है। राजपूतों के लिए इससे अधिक शर्म की और क्या बात हो सकती है?"

अपनी छावनी में पद्मिनी के आ जाने की सूचना पाकर बादशाह की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह उससे मिलने को व्याकुल हो रहा था, एक एक पल कल्प के समान बीत रहा था। पद्मिनी के साथ आई हुई सखी-सहेलियों का अधिक देर तक ठहरा रहना अलाउद्दीन को आंखों में कांटे की तरह खटक रहा था। कब ये सब वापस जांय और कब मैं पद्मिनी से मिलूँ। बस यही लालसा उसको बुरी तरह बेचैन कर रही थी। भीमसिंह को भी अपनी रानी के आत्मसमर्पण कर देने की सूचना मिल चुकी थी। उसे अपने उद्धार के लिए प्रियतमा पत्नी का यह कार्य बहुत बुरा मालूम दिया। अवसर पर भीमसिंह ने अलाउद्दीन से कहा—"बादशाह मुझे भली भांति विदित हो गया है कि मेरे छुटकारे के लिये मेरी पत्नी पद्मिनी आपके आगे आत्मसमर्पण करने को तैयार हो आपकी छावनी में आ गई है। मैं चाहता हूँ कि चिर वियोग होने से पूर्व, कुछ समय के लिये,

आप मुझे पद्मिनी से मिलने की आज्ञा दे दें। सदैव के लिए जुदा होने के पूर्व उसे एक बार स्नेह भरी दृष्टि से मैं देख तो लूँ। मुझे विश्वास है कि आप मेरे इस प्रस्ताव को अवश्य स्वीकार करेंगे और पद्मिना से मिल लेने देंगे।"

बादशाह अलाउद्दीन ने भीमसिंह को हुक्म दिया—"अच्छा तुम्हें आध घण्टे का अवकाश दिया जाता है, इतनी अवधि में तुम चाहो तो पद्मिनी से मुलाक़ात कर सकते हो। देखना, इससे अधिक समय न लगने पावे। जाओ, शीघ्रता करो।" बादशाह की आज्ञा से भीमसिंह ज्योंही पालकियों के पास पहुँचा त्योंही कुछ राजपूत सरदारों ने एक पालकी में बैठाकर उन्हें चित्तौड़ की ओर रवाना कर दिया। साथ में कुछ पालकियाँ और भेज दीं। अलाउद्दीन को पालकियाँ वापस जाती हुई देखकर बड़ा हर्ष हुआ और वह समझा कि चलो, अब पद्मिनी की सखी-सहेलियों का जाना शुरू हुआ और अब शीघ्र ही मुलाकात हो सकेगी। इस प्रकार कुछ पालकियाँ तो चित्तौड़ को चली गईं और कुछ अलाउद्दीन के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

"आध घंटे की अवधि समाप्त हो गई, परन्तु भीमसिंह पद्मिनी से मिलकर नहीं लौटा। अलाउद्दीन इस बिलम्ब के कारण व्याकुल हो उठा, उसकी अस्थिरता का ठिकाना न रहा। उफ! प्रियतमा पद्मिनी के साथ भीमसिंह का इतनी देर तक संलाप! इतना घुट घुट-कर बातें करना! खेद है कि मैं अब अधिक देर तक भीमसिंह की दुष्टता को सहन नहीं कर सकता।" बादशाह के हुक्म से फ़ौरन पालकियों का पर्दा हटाया गया, परन्तु उसमें भीमसिंह को न पाकर अलाउद्दीन बड़ा आश्चर्य चकित हुआ! हैं, भीमसिंह कहाँ गया? अरे, इसमें तो पद्मिनी भी नहीं है, वह भी कहीं चली गई! आश्चर्य! महान् आश्चर्य!! बादशाह अलाउद्दीन दाँतों में उँगली दबाये पद्मिनी और भीमसिंह के

सहसा लुप्त हो जाने पर आश्चर्य कर ही रहा था कि इतने ही में अचानक सैकड़ों शस्त्रधारी राजपूत पालकियों के पर्दे हटा हटा कर वीरता पूर्वक मैदान में आये और हुँकार पूर्वक चारों ओर तलवार घुमाने लगे। उधर मुसलमानी सेना भी मुकाबले में आ गई और दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ। बादशाह के दुख तथा आश्चर्य का ठिकाना न रहा, उसने तुरन्त कुछ चुने हुए सैनिकों को भीमसिंह को पकड़ने के लिए भेजा। मार्ग में मुसलमान सिपाहियों तथा राजपूत सैनिकों के बीच तुमुल युद्ध होने लगा। इस अवसर पर बादल और गोरा ने खूब वीरता दिखाई। भीमसिंह अवसर पाकर एक तेज़ घोड़े पर सवार हुआ और बात की बात में चित्तौड़ प्रविष्ट हो गया। मुसलमान सवारों ने भी क़िले के दरवाज़े तक भीमसिंह का पीछा किया, परन्तु उसका बेगवान अश्व किसी की पकड़ में कब आनेवाला था।

अलाउद्दीन के सिपाही राजपूत सैनिकों से लोहा लेने लगे। भयंकर मार काट मच गई, परन्तु बादशाह का अभीष्ट सिद्ध न हो पाया और अन्त में वह निराश होकर अपनी राजधानी को लौट गया। वीरवर गोरा ने इस युद्ध में जी तोड़कर लड़ाई लड़ी। वह चित्तौड़ की मानमर्यादा और पद्मिनी के सतीत्व की रक्षा करता हुआ अपनी अक्षय कीर्ति को छोड़ कर वीरगति को प्राप्त हुआ। उसका वीर-वर्णन आज मेवाड़ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। गोरा की वीरता कभी विस्मरण नहीं की जा सकती। जब तक संसार में सच्ची शूरता का यशोगान होता रहेगा तब तक गोरा का गौरव नष्ट नहीं हो सकता। युद्ध की समाप्ति पर जो अल्प-संख्यक राजपूत चित्तौड़गढ़ वापिस आये उनमें में बारह वर्ष का वीर बालक बादल भी था। इस बालक ने युद्ध में वह अपूर्व कौशल दिखाया कि मुसलमान शत्रुओं

ने भी उसके पराक्रम की भर पेट प्रशंसा की।

प्रश्न

१—महारानी पद्मिनी की कथा संक्षेप में लिखो।

२—अलाउद्दीन के चरित्र पर प्रकाश डालो।

३—गोरा और बादल ने किस प्रकार युद्ध किया? विस्तार पूर्वक वर्णन करो।

४—नीचे लिखे शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करो:—
अर्द्धाङ्गिनी, सुसज्जित, घोषणा, उद्धार, कलंकित।

५—महारानी पद्मिनी के पाठ से तुम्हारे हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है और क्या शिक्षा मिलती है?

६—'आँखों में कांटे की तरह खटकना' इस कहावत का अर्थ स्पष्ट करो।

१३—सदाचार

(संकलित)

मानव-जीवन का सब से अधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी और आवश्यक अंग सदाचार है। जीवन की शोभा सदाचार ही से बढ़ती है और यही उसकी महत्ता तथा श्रेष्ठता का परिचायक है, बल्कि यों कहना चाहिए कि सदाचार ही संसार का व्यवस्थापक नियम है। संसार का सारा सुख, समस्त उत्तम बातें, सदाचार के आधार पर ही स्थित है। ईश्वर ने मनुष्य को जितने प्रकार के बल दिये हैं, चरित्र-बल उन सब में श्रेष्ठ है और इसी की सहायता से वह सब से अधिक शुभ कृत्य कर सकता है। सदाचारी मनुष्य अपनी प्रमाणिकता के कारण लोगों पर एक प्रकार का वशीकरण-सा डाल देता है, और उनके मन में उसके प्रति आपसे आप पूज्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं। सब लोग उस

की बातों पर दृढ़ विश्वास रखते हैं, उसके व्यवहारों और कार्य्यों को आदर्श तथा अनुकरणीय मानते हैं और सदा बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति से उसका स्मरण करते हैं। सदाचार एक ऐसा गुण है जो मनुष्य को संसार में देवता के स्वरूप में प्रगट करता है। उसके दर्शन और गुण-गान से ही लोगों में बहुत से सद्भावों की जागृति होने लगती है और वे सत्पथ पर लग जाते हैं। संसार में जितनी बातें श्रेष्ठ, सुन्दर और मानव-जाति के लिए परम कल्याणकारक हैं उन सब के कर्त्ता और रक्षक सदाचारी ही हैं। यदि संसार में सदाचारी मनुष्य न होते तो उसमें रहना नरक वास से कम न होता। इस कथन की सत्यता का बहुत-ही छोटे-से उदाहरण द्वारा प्रमाणित की जा सकती है। आप असंख्य सदाचारियों और सच्चरित्रों को किसी एक ही स्थान में बसा दीजिए, ये सब के सब केवल शान्ति पूर्वक ही नहीं रहेंगे, बल्कि परस्पर एक दूसरे के सुख और कल्याण की वृद्धि में भी सहायक होंगे। उनका समाज सदा परम सुखी, सम्पन्न और उन्नतिशील रहेगा और किसी प्रकार का दुःख, क्लेश या कुभाव वहाँ फटकने भी न पावेगा। उनकी सन्तान भी सदाचारिणी ही होगी और सब प्रकार से अपने पूर्वजों के दिखलाये हुए पथ पर चलेगी। ऐसा साधु समाज हमेशा बढ़ता और फूलता-फलता ही रहेगा। पर अधिक नहीं, केवल सौ पचास लुच्चों, उचक्कों, बदमाशों, जुआरियों और इसी प्रकार के दूसरे दुराचारियों को एक स्थान पर बसा दीजिए, फिर देखिये रोज़ कितनों के सर फूटते हैं, कितनी लड़ाइयाँ होती हैं, कितना असंतोष फैलता है और कितना दुख बढ़ता है। ऐसा समाज पचीस वर्ष भी न चल सकेगा और शीघ्र ही उसका सर्वनाश हो जायगा। यही कारण है कि सदाचारियों के प्रति मनुष्य के मन में अपने श्रद्धा और

आदर बुद्धि उत्पन्न होती है। किसी एक सदाचारी और एक विद्वान अथवा बुद्धिमान को लीजिये और देखिये कि दोनों में किस के प्रति आपके मन में श्रद्धा-भाव की जागृति होती है। स्वभावतः आपका मन सदाचारी की ओर अधिक खिंचेगा विद्वान वा बुद्धिमान को देखकर हमारे मन में एक प्रकार का कुतूहल और आह्लाद ही होगा। इससे अधिक और कुछ होने की सम्भावना नहीं, पर सदाचारी हमारे आदर, सम्मान और भक्ति का पात्र होगा। राम और रावण, कृष्ण और कन्स, युद्दिष्ठिर और दुर्योधन प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु आदि के सम्बन्ध में लोगों के मन में जो स्वाभाविक श्रद्धा और घृणा होती है उसका कारण सदाचार और कदाचार ही है। बुद्धि या विचार कौशल से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के भावों तथा कार्यों को सृष्ट हो सकती है। विद्या की भी वही दशा है। बुद्धि और विद्या ये दोनों ऐसे बल हैं जिनका श्रेष्ठ उपयोग हो सकता है और निकृष्ट भी। यदि कोई बी०ए० पास मनुष्य झूठ बोले अथवा चोरी करे तो वह ऐसी झूठी-झूठी बातें बनाकर कहेगा और चोरी की ऐसी-ऐसी युक्तियाँ निकालेगा कि लोग दाँतों तले उँगली दबावेंगे। पर सदाचार बल से आप स्वप्न में भी इस बात की आशा नहीं कर सकते कि उससे समाज का किसी प्रकार का अनिष्ट होगा अथवा वह लोगों को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने का कारण होगा।

संसार में मनुष्य को जितने काम करने पड़ते हैं, अपना आचरण-सुधारना उन सब में अधिक आवश्यक, उपयोगी और महत्वपूर्ण है। इसके लिए प्रत्येक मनुष्य को बहुत ही शान्ति और ध्यानपूर्वक अपने स्वभाव और मनोवृत्तियों का निरीक्षण करना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य में अपने आपको उन्नत करने की ईश्वरदत्त शक्ति हुआ करती है। पर, साधारणतः लोगों को

अपनी शक्ति का पता ही नहीं होता अथवा कम से कम वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, इसलिए सदा अपने आप को अयोग्य और असमर्थ समझकर निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन उस प्रकार का विचार बहुत ही हानिकर और घातक है। कभी किसी मनुष्य को यह न समझना चाहिए कि मैं अपने स्वभाव में परिवर्त्तन नहीं कर सकता अथवा बुरे कामोंको छोड़ कर अच्छे काम में नहीं लग सकता। मनुष्य का जीवन शतरंज के खेल की तरह है। स्वभाव, परिस्थिति और मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक शक्तियाँ उसके मोहरे हैं जो प्रत्येक मनुष्य को प्रायः समान रूप से मिले हैं। अगर खिलाड़ी योग्य और कुशल होगा तो इन्हीं मोहरों की सहायता से बाज़ी जीत लेगा और यदि अयोग्य या मूर्ख होगा तो हार जायेगा।

अपना जीवन सुधारने और सदाचारी बनने की प्रधान कुंजी कर्त्तव्य पालन है जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य -पालन करता है, वह न तो कभी दुखी रहता है और न कभी जमाने की शिकायत करता है। जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य का ध्यान छोड़ देता है अथवा जान बूझकर उसका पालन नहीं करता वह कभी सुमार्ग पर नहीं चल सकता। सदाचार और कर्त्तव्य-पालन का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि हम उन दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं कर सकते। यदि हम सदाचारी बनना चाहें तो हमें कर्त्तव्य पालन की आवश्यकता होती है और यदि हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें, तो आप से आप सदाचारी हो जाते हैं। जिस प्रकार सदाचार की कुंजी कर्त्तव्यों का ज्ञान और पालन है, उसी प्रकार कर्त्तव्यों के ज्ञान की कुंजी हमारा अंतःकरण अथवा विवेक है। विकट से विकट प्रसंगों पर भी अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान हमारा विवेक ही करता है, वही सदा हमें यह बतलाता है कि हमें कौन सा काम करना चाहिए और किस पथ पर चलना

चाहिए। अन्तःकरण में लोग ईश्वर का वास मानते हैं और वह बात है भी ठीक। इस प्रकार ईश्वर सदा हमारे साथ रहता है और वह हमें उचित मार्ग दिखलाता है।

सदाचारी मनुष्य के मन में सदा ईश्वर का भय बना रहता है, उसकी सभी बातें और कार्य सत्यता पूर्ण होते हैं। प्रत्येक अच्छी बात और उत्तम का के लिये भले मनुष्य के हृदय में सर्वोच्च स्थान होता है। जिस प्रकार ऐसे मनुष्य से सारा कुटुम्ब सुखी होता है, उसी प्रकार ऐसे बहुत से लोगों से सारा देश सुखी होता है। ऐसे मनुष्यों को अधिकता के बिना न तो ससार का कोई का शान्तिपूर्वक चल सकता है और न लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं। एक विद्वान ने सदाचार को धर्म शब्द को पर्याय ही माना है। और वास्तव में जो मनुष्य पूर्ण धार्मिक होगा, वह परम सदाचारी भी होगा।

जब किसी देश में कोई बड़ा महापुरुष, पराक्रमी या देशभक्त होता है तब उसको देखा-देखी और भी बहुत से वैसे ही लोग उत्पन्न हो जाते हैं। भगवान बुद्ध के समय में सारा देश प्रायः त्यागियों और महात्माओं से इसीलिए भर गया था कि लोगों के सामने त्याग और धर्म की एक प्रत्यक्ष मूर्ति ही आ खड़ी हुई थी। महाराज शिवाजी के समय महाराष्ट्र प्रान्त में इसीलिये असंख्य वीर निकल आये थे, कि उस देश में एक आदर्श वीर और पराक्रमी पुरुष उपस्थित था। जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे के समय से अब तक जो निःस्वार्थ भाव से देश सेवा करनेवाले इतने लोग हुए हैं, उसका भी यही कारण है। बात यह है कि बड़े लोग कुछ स्व अपने उपदेश और सामीप्य आदि कारण लोगों को अपने समान बना लेते हैं, और कुछ लोग केवल उन्हें आदर्श मानकर वैसे हो जाते हैं। बड़े लोगों के कार्यों और आचरण आदि का प्रभाव साधरण लोगों पर अवश्य पड़ता है।

जिस देश में सदाचारी, विद्वान, शूर, उद्योगी और महात्मा पुरुष उत्पन्न होते हैं, उस देश का इतिहास बहुत ही उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे पुरुषों का इतिहास का कारण कहना चाहिये, क्योंकि इतिहास में केवल मनुष्यों के कृत्यों का वर्णन होता है। भारत का प्राचीन इतिहास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास, पराशर आदि ऋषियों, भगीरथ, दिलीप, रघु, अज, राम, युधिष्ठिर आदि राजाओं और गार्गी, अनसूया, सावित्री जानकी आदि विदुषियों का ही इतिहास है। भोज, विक्रम, कालिदास और भवभूति के कारण भारत के इतिहास की कितनी शोभा बढ़ी है; अहिल्याबाई रानी भवानी और लक्ष्मीबाई के कार्यों से इतिहास के अङ्ग की कितनी उत्तम पूर्ति हुई है। यदि इन लोगों के जीवन-वृत्तान्त निकाल दिये जायँ, तो हमारे देश के इतिहास में क्या बच रहे? यदि शिवाजी और गुरुगोविन्दसिंह ने गाय और ब्राह्मणों की रक्षा न कीहोती तो आज हम किसकी कीर्ति गाते? ऐसे ही लोग देश के वास्तविक जीवन और वैभव हुआ करते हैं।

प्रश्न

१—सदाचार से तुम क्या भाव समझते हो

२—सदाचार और कर्त्तव्य पालन में पारस्परिक क्या सम्बन्ध है?

३—किसी सदाचारी की उपस्थिति का समाज के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है?

४—अपने देश के किसी सदाचारी व्यक्ति का जीवन चरित्र लिखो।

५—नीचे के शब्दों के अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो:—
सद्भाव, कुतूहल, आह्लाद, अन्तःकरण।

१४—सभानेत्री का भाषण

[भाषणकर्त्री—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

[इनका जन्म सं० १९६१ है। ये हिन्दी की सुयोग्य कहानी लेखिका और सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं। इन्होंने अपनी कहानियों और कविताओं के द्वारा हिन्दी के स्त्री-साहित्य को कई क़दम आगे बढ़ाया है। इन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से दो बार पाँच पाँच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं। जिनमें 'मुकुल', 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपना यह भाषण प्रयाग महिला विद्यापीठ में होने वाले स्त्री-कवि सम्मेलन के सभानेत्री के पद से दिया था। इसमें हिन्दी-साहित्य की प्रगति की अच्छी व्याख्या की गई है]

साहित्य में कवि का स्थान बहुत ऊँचा है। वह दार्शनिक, इतिहास कारक, समाज-शास्त्री तथा धर्माचार्य के सिद्धान्तों को सुन्दर साँचे में ढालकर जन-साधारण के हृदय-मन्दिर में स्थापित करता है। उनके प्रति हमारी भक्ति उत्पन्न करता है, यहाँ तक कि हम उनको पूजने लगते हैं।

इतिहासकारों के राम और कृष्ण का वास्तविक जीवन चाहे जैसा रहा हो, आदर्श अथवा अत्यन्त साधारणतः उनके जीवन के, यहाँ तक कि उनके अस्तित्व के सम्बन्ध में भी इतिहासकार संदेह कर सकते हैं, परन्तु वाल्मीकि और तुलसीदास के राम, व्यास, सूरदास तथा मीरा के कृष्ण वास्तविक हैं: जिनके अस्तित्व का स्पंदन युगों से भारतवर्ष के स्त्री-पुरुषों और बच्चों तक को स्फुरण दे रहा है।

इसी प्रकार जगत की उत्पत्ति और विनाश की जटिल समस्या, कारण, का और परिणाम की उलझन, पुनर्जन्म या नितान्त विनाश का दुरूह प्रश्न, उसी प्रकार प्रकृति और माया का विकट जाल, ये सब कवि की जादू-भरी लेखिनी के द्वारा इतने सरल और ग्राह्य हो जाते हैं, कि हम उन्हें स्वयं सिद्ध समझने लगते हैं। कवि संसार को शिक्षा देता है, इतिहासकार का क्रूर सत्य या धर्माचार्य का उग्र दंड-विधान दिखाकर नहीं, किन्तु उसका मन बहलाकर, हसाँकर मृदुलता-पूर्वक रुलाकर। वह उँगली के इशारे से नहीं कहता कि यह करो, और वह मत करो। वह एक छोटी-सी कहानी कह देता है, और हम समझ जाते हैं कि हमको क्या करना चाहिए। यही तो कारण है कि संसार के प्रायः सभी धर्म-प्रवर्तकों ने अपने नवीन सिद्धान्तों को जन-साधारण के हृदयों में प्रविष्ट कराने के लिये कवि की कल्पना का सहारा लिया है, और छोटी-छोटी कहानियों की सृष्टि की है। गौतमबुद्ध ने यही किया, ईसा मसीह ने यही किया, मुहम्मद ने यही किया, और आधुनिक दयानन्द तथा रामकृष्ण ने भी यही किया है। न केवल धर्माचार्यों ने ही, वरन् भारतवर्ष में तो स्मृतिकार, चिंतक, इतिहासकार, ज्योतिषी, योगी, दार्शनिक, सब ने अपने-अपने सिद्धान्तों और विद्या का प्रचार करने के लिये कविता का सहारा लिया है। यहाँ तक की गणितज्ञ, जो बावन तोला पाव रत्ती की नपी-तुली बात करता है, वह भी मैंसुरेशन को लीलावती का शृङ्गार चढ़ाकर पार्थिव पदार्थों की नाप-तौल करता है। आधुनिक गणितशास्त्री भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि लीलावती की शैली आजकल की जामेट्री और मैंसुरेशन से कहीं अधिक मनोहर है, इनमें रूखापन है और लीलावती में सरसता।

इस प्रकार कवि भिन्न-भिन्न विद्याओं का शृङ्गार-विशारद

है, जिसके हाथ में पड़कर सबका रूप निरख उठता है। वह केवल शृङ्गार विशारद ही नहीं है, वह सब में नई स्फूर्ति और नवजीवन का संचार भी करता है, वह सत्य को सुन्दर और प्रिय बना देता है। उसका यह कहना है, कि "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" और वह अपने इस सिद्धान्त का मानवीय मस्तिष्क की प्रत्येक क्रिया अक्षरशः-पालन करता है।

साहित्य में जिस प्रकार कवि का स्थान ऊँचा है, उसी प्रकार कवियों में भी, मेरा विश्वास है, स्त्री-कवियों का स्थान पुरुष कवियों की अपेक्षा ऊँचा रहेगा। कविता प्रायः भाव-प्रधान रहती है, और स्त्रियों के समान भावुकता पुरुषों में नहीं मिल सकती।

नारी-हृदय की तुलना हम वायु-मापक यन्त्र से कर सकते हैं, जिसमें छोटे-से-छोटा परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है। स्त्री-हृदय की कोमल वृत्तियाँ अत्यधिक सजग और सजीव रहती हैं। उनकी हृदय वीणा का प्रत्येक तार इतना खिंचा और कसा रहता है कि वह वातावरण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आघात से निनादित हो उठता है। शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के पंडितों का कहना है कि स्त्रियों की शरीर-रचना और मन पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत है।

प्रेम और बलिदान मनुष्य को पशु की श्रेणी से उठाकर दैवत्व के पद पर पहुँचाते हैं। पारस वह है, जो लोहे को भी सोना बना देता है और वह हमको मिलेगा विशेष मात्रा में स्त्रियों के अन्दर। स्त्रियों के समान प्रेम और बलिदान किसने किया है? इतिहास इसका साक्षी है, इतिहास ही क्यों, प्रत्येक घर के अन्दर उनके प्रेम और बलिदान की कहानी लिखी है। उनका बलिदान आवेश-जन्य और क्षण-भर में सर्वस्व स्वाहा कर देनेवाला नहीं होता, किन्तु वे दिन और रात प्रत्येक घड़ी, पल-

पल, जीवन भर बलिदान करती हैं, और बलिदान करती हैं मुसुकुराते हुए। संसार के बड़े-से-बड़े कर्मयोगी योद्धा, विद्वान् और कवि ने स्त्रियों की स्फूर्तिदायिनी शक्ति को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। विश्व-विजयी नेपोलियन सदा अपनी माता का गुण-गान करता रहा। अमर कवि दाँते ब्रिट्रिस (अपनी प्रेयसी) का आभारी है। तुलसीदास की राम-भक्ति की प्रेरिका उनकी पत्नी थीं। लङ्का की विजय-कामना सीताजी के कारण रामचन्द्रजी के मन में हुई थी, और वह का राधिका ही निष्काम प्रेम था, जिसने गीता का तत्त्व श्रीकृष्ण को सिखलाया था। समस्त मानव-जाति स्त्रियों की गोद में पली है और उसने उनकी उँगली के सहारे खड़ा होना और चलना सीखा है। पुरुषों ने ही यह घोषित कर रक्खा है, कि स्त्रियाँ वास्तव में देवी हैं, जिन्होंने इस मृत्यु-लोक को स्वर्ग बनाकर रक्खा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि इतने पर भी अभी तक पुरुषों के समान अधिक संख्या में और ऊँची श्रेणी की स्त्री-कवयित्रियाँ क्यों नहीं हुई? कारण स्पष्ट है, स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र अभी तक दूसरा ही रहा है। उन्होंने कविता के क्षेत्र में पैर नहीं रक्खा था, किंतु क्रमशः वे अब इस क्षेत्र में भी आ रही हैं, और हम इस बात के लिये कृतज्ञ हैं कि इस क्षेत्र में पुरुष उनकी सफलता और महत्ता को स्वीकार करने लगे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में स्त्रियों का आना अत्यन्त आवश्यक है। स्त्रियों के सहयोग के बिना मानव-साहित्य संपूर्ण नहीं हो सकता। एक पुरुष किसी पुरुष की हृदयानुभूति को सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है। परन्तु जब वह स्त्रियों की अनुभूति को प्रकट करने जाता है, तब उसे विवश होकर कल्पना से ही काम लेना पड़ता है। उदाहरणार्थ सती की मनोभावना, वधू के उल्लास और माता के वात्सल्य का पुरुषों द्वारा किया हुआ वर्णन

अमौलिक ही रहेगा, क्योंकि पुरुष इन उदात्त अवस्थाओं का अनुभव कर ही नहीं सकते।

प्रेम के क्षेत्र में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व इससे भी सिद्ध है कि प्रेम के पुजारी पुरुष-कवियों और अधिकांश भक्तों ने प्रेम के आनंदातिरेक में डूबकर अपने को इष्टदेव की प्रेयसी के रूप में पाया है। वल्लभ-संप्रदाय के कवि, भक्त-कवि रूपकला तथा बनीठनीजी इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

काव्य को शास्त्रकारों ने रसात्मक वचन माना है। किसी-किसी ने उसे शब्द-संगीत भी कहा है। काव्य का ध्वनि-संगीत से भी घनिष्ठ संबंध है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो कविता के क्षेत्र में स्त्रियों को एक स्वाभाविक सुविधा प्राप्त है, जो पुरुषों को नहीं है। स्त्रियों के स्वभाव की कोमलता उनके शब्द और वाणी में व्याप्त है। कर्ण-कटु शब्दों को मधुर तथा सरल बनाने का कार्य अवश्य ही स्त्रियों ने किया होगा। संस्कृत-साहित्य में इसका प्रचुर प्रमाण है। शकुंतला को उनकी सखी सउंदला कहती है। कर्कशा श, क, और त के स्थान पर स, उ और द रखकर सउंदला की मधुरिमा उत्पन्न कर दी। इसी प्रकार कृष्ण से कन्हैया कहनेवाली भी कोई ब्रज-बाला ही रही होगी। घर के अंदर की बोलचाल की भाषा में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की भाषा में अधिक सरलता और कोमलता रहती है। पुरुषों की भाषा में अधिकतर पांडित्य पाया जाता है, और स्त्रियों की भाषा में स्वाभाविक सरलता। यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है, और यही बात पुरुष तथा स्त्रियों की कविताओं की तुलना करने से प्रकट होती है।

प्रश्न

१—भाषण किसे कहते हैं, तुम भाषण और लेख, दोनों में किसको अधिक अच्छा समझते हो, और क्यों ?

२—कवि और इतिहासकार में क्या अन्तर होता है, उदाहरण देकर समझाओ।

३—कवि जीवन का महत्व क्या है ?

४—मनुष्य को अपने भावों का जन-समुदाय के ऊपर प्रभाव डालने के लिए कविता का सहारा क्यों लेना पड़ता है ?

५—स्त्री-कवियों का स्थान, पुरुष-कवियों की अपेक्षा क्यों अधिक ऊँचा रहेगा ?

६—कैसी क्रियाएँ हैं—इनकी पद व्याख्या कर इन्हीं के समान दूसरी क्रियाएँ खोजो—
नहीं मिल सकती, बना रक्खा है, करने लगे हैं।

७-अन्तिम अनुच्छेद की क्रियाओं का वाक्य-परिवर्तन करो।

१५—श्री गोस्वामी तुलसीदास

[ले०—बाबू श्यामसुन्दर दास]

[राय बहादुर बाबू श्यामसुन्दर दास जी का जन्म सम्वत् १९३२ में हुआ था। आपके पिता का नाम लाला देवीदास खन्ना था। आप २२ वर्ष की अवस्था में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० पास करने के पश्चात् ही सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस में पढ़ाने लगे। तदनन्तर कालीचरण हाई स्कूल लखनऊ में प्रधानाध्यापक रह कर फिर काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर आगये। आप ही नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक थे। हिन्दी शब्द सागर नामक कोष भी आप ही की अध्यक्षता में छपा है। आपने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। आपके लेखों की लेखन-शैली में यह एक मुख्य बात

है कि दूसरी भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रायः होता ही नहीं है। आपकी भाषा गठित और सुसम्बद्ध रहती है। सरस्वती मासिक पत्रिका का भी बहुत दिनों तक सम्पादन किया है। आपकी लिखी कुछ पुस्तकें निम्न-लिखित हैं:—

रूपक रहस्य, कविकोविद रत्नमाला, साहित्यालोचन, भाषा विज्ञान इत्यादि।]

साधारणतया भारतवर्ष भर में और विशेषकर उत्तरभारत में ऐसा कोई मनुष्य न होगा जिसने 'तुलसी-रामचरित-मानस' का नाम न सुना हो। राजा से लेकर रङ्क तक और महलों से लेकर झोपड़ों तक सब कहीं इसका प्रचार है। बड़े-बड़े विद्वानों से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक रामचरितमानस से अपने मानस की तृप्ति करते और अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। इस ग्रन्थ ने हिन्दू जाति का बड़ा उपकार किया है। प्रीति, नीति आचार व्यवहार सब बातों में मानों, 'रामचरित-मानस' ही हिन्दूमात्र के लिए एकमात्र पथदर्शक है।

प्रत्येक विषय में उसकी चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं और जन साधारण के लिए धर्म-शास्त्र का काम देती हैं। न जाने इस ग्रन्थ ने कितनों को डूबने से बचाया, कितनों को कुमार्ग पर जाने से रोका, कितनों के निराशमय जीवन में आशा का संचार किया, कितनों को घोर पाप से बचा कर पुण्य के सञ्चय करने में लगाया और कितनों की धर्मपथ पर डगमगाते हुए चलने में सहारा देकर सँभाला। रामायण के विशद चरित्र-चित्रण एवं मानवीय मनोविकारों के स्पष्टीकरण ने इसे अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है। ऐसे ग्रन्थरत्न के बनाने वाले 'गोस्वामी तुलसी-दास' का जीवनचरित्र सुनने की सभी को उत्कण्ठा रहती है, किन्तु शोक है कि इनके जीवन-वृतान्त के विषय में बहुत कम

बातें ज्ञात हैं। साधारण कवि प्रायः लोभवश अपना और अपने आश्रय-दाता का वृत्तान्त अपने ग्रन्थ में लिखा करते हैं। परन्तु गोस्वामी जी ने मनुष्यों का चरित्र न लिखने का प्रण किया था, वे केवल भगवान का गुण-गान किया करते थे, इसलिए इन्होंने अपना कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखा। कहीं-कहीं उनकी रचनाओं से उनके चरित्र का आभास-मात्र मिलता है किन्तु यह केवल अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के लिए दिया गया है। किसी-किसी ग्रन्थ का समय भी उन्होंने लिख दिया है। इस प्रकार उनका चरित्र-वर्णन करने के लिए हमें अधिकतर दूसरे ग्रन्थों एवं किंवदन्तियों का सहारा लेना बड़ा आवश्यक है।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-समय किसी प्रमाणिक ग्रन्थ में लिखा नहीं मिलता। कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म विक्रमी सम्वत् १५८६ में हुआ इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने लिखा है कि वे सम्बत् १५८३ के लगभग पैदा हुए थे। गोस्वामी जी की शिष्य-परम्परा की चौथो पीढ़ी में काशी-निवासी श्री शिवलालजी हुए। उन्हों ने 'रामचरितमानस' पर 'मानस मयङ्क' तिलक रचा। उसमें लिखा है कि "१५५४ सम्वत् गोस्वामी तुलसीदास जी प्रकट हुए और पाँच वर्ष की अवस्था में गुरू से कथा सुनी, फिर चालिस वर्ष की अवस्था में सन्तों से भी वही कथा सुनी और उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बाद अठहत्तरवें वर्ष में रामचरित मानस को बनाना आरम्भ किया। सम्बत् १६३० में उनकी अठहत्तर वर्ष की अवस्था थी। १६८० में परमधाम सिधारे। अठहत्तर वर्ष की अवस्था में गोस्वामी जी ने रामायण आरम्भ की और १२६ वर्ष की दीर्घ आयु भोगकर वे परमधाम सिधारे। यह बात बड़ी संदिग्ध मालूम होती है और निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। हम तो

दृढ़ता पूर्वक केवल इतना ही कह सकते हैं कि गोस्वामी जी का जन्म सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ और वे बड़ी आयु भोग कर परमधाम सिधारे। इनकी मृत्यु काशी में प्लेग के कारण हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है :—

दोहा—संवत् सोरह सौ असी, असो गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

कोई कहता है इनका जन्म तारी में हुआ, कोई हस्तिनापुर, कोई चित्रकूट के पास हाजीपूर और कोई बाँदा ज़िले में राजापुर को इनकी जन्मभूमि बतलाता है; बहुमत से इनका जन्मस्थान राजापुर ही माना गया है; यहीं पर गोस्वामी जी की कुटी, मन्दिर आदि आज भी विद्यमान हैं।

कोई इन्हें कान्यकुब्ज, कोई सरयूपारीण और कोई पाराशर गोत्र द्विवेदी ब्राह्मण कहते हैं। इसके लिए भी कोई विशेष प्रमाण नहीं जिससे कि हम निश्चयपूर्वक कुछ कह सकें। हाँ, इतना अवश्य है कि ये ब्राह्मण थे और बहुत सम्भव है कि सरयूपारी हों।

लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। यह कथन भी केवल अनुमान-मात्र है; इसकी पुष्टि विशेष रूप से कहीं नहीं मिलती। तुलसी-चरित्र में लिखा है कि तुलसीदास ने स्वयं कहा है कि इनके प्रपितामह परशुराम मिश्र थे जिनके पुत्र का नाम शङ्कर मिश्र था। इनके सन्तु मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र हुए। रुद्रनाथ मिश्र के गणपति, महेश, तुलाराम और मङ्गल चार पुत्र और वाणी एवं विद्या नाम की दो कन्याएँ हुईं। तृतीय पुत्र तुलाराम ही गोस्वामीजी थे। इनके गुरु नरहरिदास ने इनका नाम रामबोला रक्खा था। किन्तु यह अपनी दीनता दिखाने के लिए

अपने आप को तुलसीदास कहने लगे। कहते हैं कि अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। त्यागने के सम्बन्ध में तो तुलसीदास ने विनयपत्रिका में स्पष्ट कहा है पर उसका कारण नहीं बतलाया। इधर तुलसी-चरित्र में विवाह तक तुलसीदास का माता-पिता के साथ रहना स्पष्ट कहा है। सम्भव है कि किसी कारणवश बालकपन से माता-पिता के जीवित रहते ही, अपने गुरू नरहरिदास के यहाँ वे रहते रहे हों।

यह प्रसिद्ध है कि इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जिससे तारक नामक एक पुत्र भी पैदा हुआ जो बचपन में ही मर गया था। तुलसी-चरित्र में इनके तीन विवाह लिखे हैं। तीसरा विवाह कञ्चनपुर ग्राम के उपाध्याय लक्ष्मण की कन्या बुद्धिमती से हुआ था। इसी के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुए।

कहते हैं कि तीसरे विवाह की स्त्री पर गोस्वामी जी बहुत आसक्त रहा करते थे। एक दिन स्त्री बिना कहे अपने पिता के घर चली गई। गोस्वामी जी से पत्नी-वियोग न सहा गया, वहाँ जाकर वे स्त्री से मिले। वहाँ स्त्री के बुरा भला कहने से ऐसे विरक्त हुए कि उसके बार-बार विनती करने पर भी सीधे काशी चले गये और भगवद्भजन में मग्न रहने लगे। वहां गङ्गा के तट पर, असी घाट के समीप, उनका मठ अब तक बना हुआ है। वहाँ एक जोड़ी खड़ाऊँ रक्खी हुई है। लोग कहते हैं कि वे तुलसी की हैं। वे कभी--कभी तीर्थ--यात्रा के लिए भी जाया करते थे। इनमें अयोध्या, चित्रकूट और मथुरा मुख्य हैं।

गोस्वामी जी स्मार्त वैष्णव थे। स्मार्त सब देवताओं का पूजन तथा जप करते हैं, वे किसी से विरोध नहीं रखते। यही सिद्धान्त गोस्वामी तुलसीदास जी का भी था, क्योंकि उन्होंने अपने प्रत्येक ग्रंथ में सभी देवताओं से प्रार्थना की है और

सभी को राम-मय बतलाया है। रामायण में गोस्वामी ने अपनी दीनता बहुत ही दिखलाई है, यहाँ तक लिख दिया है कि—

कबि न होऊँ नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्याहीनू॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहऊँ लिख कागद कोरे॥

ऐसी कहावत है कि गोस्वामी जी शौच के लिए नित्य गङ्गा पार जाया करते थे और लौटते समय लोटे का बचा हुआ जल आम के पेड़ की जड़ में डाल देते थे। एक दिन उस पेड़ पर रहने वाले प्रेत ने उस जल से तृप्त हो गोस्वामी जी से वर माँगने के लिये कहा। गोस्वामी जी ने रामचन्द्र जी के दर्शन का वर माँगा। उस पर अपनी अशक्तता बतलाते हुए प्रेत ने कहा कि अमुक मन्दिर में रामायण की कथा सुनने के लिये मैले-कुचैले कोढ़ी का रूप धारण किये हुए हनुमान जी प्रतिदिन आते हैं, उन्हीं की कृपा से तुम्हारा मनोरथ सफल हो सकेगा। निदान, ऐसा ही हुआ। बहुत कुछ आग्रह करने पर हनुमान जी ने गोस्वामी जी से कहा कि चित्रकूट में जाओ, वहीं दर्शन होगा। तुलसीदास जी ने ऐसा ही किया।

उनके सम्बन्ध में और भी कई एक विचित्र कथानक प्रचलित हैं, जैसे मुर्दे का जिलाना; हत्या छुड़ना आदि आदि। तुलसीदास जी ऐसे पारदर्शी तथा वाक्‌सिद्ध महात्माओं के विषय में इनका संगठित होना सहज है, किन्तु इनकी यथार्थता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि तुलसीदास जी ने कबीर आदि की तरह अन्य कोई अलग मत नहीं चलाया, परन्तु चाहे किसी भी मत या धार्मिक विश्वास का हिन्दू क्यों न हो वह गोस्वामी जी के दिखाये मार्ग का अवश्य कुछ न कुछ अनुसरण करता है। उन्होंने रामायण में धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति आर्य ग्रन्थों के अनुसार इस प्रकार सीधी-सीधी भाषा में उदाहरण के साथ सम-

झाई है कि शैव, शाक्त, स्मार्त, वैष्णव किसी भी सिद्धान्त से विरोध नहीं पड़ता और सब मतानुयायी उनकी रामायण का सम्मान करते हैं, तथा साधारण लोगों की समझ में तो यह पाँचवाँ वेद है।

तुलसीदास जी ने जो कुछ लिखा है, हिन्दी भाषा में ही लिखा है। उनके ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि वे संस्कृत भी पढ़े थे। रामायण के प्रत्येक कांड के आदि में उन्होंने जो श्लोक लिखे हैं वे इस बात के प्रमाण हैं। उन श्लोकों में उन्होंने यह भी लिखा है कि अनेक पुराणों को देखकर उनका निचोड़ रामायण रक्खा गया है। पुराण और उपनिषद् आदि ग्रंथ संस्कृत में ही हैं। इससे भी यह विदित होता है कि वे संस्कृत जानते थे। वे फ़ारसी भी जानते थे। फ़ारसी में लिखे हुये उनके कागज़ पत्र मिले हैं। सारांश यह है कि वे एक विद्वान पुरुष थे।

तुलसीदास ने छोटे-बड़े बारह ग्रंथों का निर्माण किया है। उनमें रामायण, विनय-पत्रिका, गीतावली दोहावली, कवित्त रामायण और रामाज्ञा अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने जितनी कविता की है सब में श्रीरामचन्द्र जी का ही गुणगान किया है। उनके ग्रंथों में रामायण सब से बड़ा और सब से उत्तम ग्रंथ है। इसका नाम तुलसीदास ने रामचरित मानस रक्खा था, परन्तु अब सब कोई उसे रामायण ही के नाम से पुकारते हैं। किसी-किसी का यह मत है कि यह काव्य संस्कृत के आदि काव्य वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया है। परन्तु यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा अध्यात्म-रामायण से तुलसीदासजी की रामायण की कथा अधिक मिलती है।

तुलसीदास जी बड़े महात्मा और बड़े कवि थे। रामायण में उन्होंने जिस जिस विषय का वर्णन किया है उसका रूप सा खड़ा कर दिया है। उनकी रामायण में अयोध्या कांड

सब से उत्तम है। उसमें भी श्रीरामचन्द्र के साथ चलने के लिए सीता की प्रार्थना, लक्ष्मण का अपनी माता से वन जाने की आज्ञा माँगना और राजगद्दी न स्वीकार करने के विषय में वशिष्ठ को भरत का उत्तर—अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा विषेश मनोहर हैं। ब्रज, बुन्देलखंड, बिहार, वैसवाड़ा इत्यदि कई प्रान्तों की बोलियों में तुलसीदास जी ने रामायण लिखी है। उनके अन्य ग्रन्थों में विनयपत्रिका का द्वितीय स्थान है। उसमें उन्होंने श्री रामचन्द्र सम्बन्धी नाना प्रकार की विनय भरी कविताएँ की हैं।

सुनते हैं, राजापुर में तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई रामायण की एक पुस्तक थी। उसे कोई चुरा ले गया। जब वह पकड़ा गया तब उसने उस पुस्तक को यमुना की धारा में प्रवाहित करने दिया, इससे वह बिगड़ गई। अयोध्या काण्ड बीच में था इस कारण केवल वही पढ़ने योग्य रह गया है। वह अब तक राजापुर में रक्खा है।

धर्म और चरित्र के अतिरिक्त विद्या-प्रचार में भी रामायण ने बहुत कुछ सहायता दी है। लाखों मनुष्य केवल रामायण पढ़ने ही के लिए पढ़ना लिखना सीखते हैं। निदान, रामायण का इतना बड़ा उपकार हिन्दुओं के सिर पर है कि वे कभी गोस्वामी जी से उऋण नहीं हो सकते।

प्रश्न

१—नीचे लिखे वाक्यों को सरल करो:—

(अ) न जाने इस ग्रन्थ ने कितनों को·········सहारा देकर सम्हाला।

(आ) रामायण में उन्होंने जिस विषय···········रूप सा खड़ा कर दिया है।

२— नीचे लिखे शब्दों का अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो:—
किंवदंती, आसक्त, पुष्टि, आग्रह ।
३—रामायण का साधारण जनता में अधिक प्रचार क्यों है ?
४—तुलसीदास का जीवन-चरित्र लिखो ।
५—लेखक का जीवन-चरित्र लिखो ।

१६—भामाशाह की स्वामिभक्ति

[ले०—बाबू राधाकृष्ण दास]

[आप हिन्दी के अच्छे लेखक हैं । नाट्य-कला में आप पटु हैं । आपकी भाषा में ओज रहता है । प्रस्तुत नाटक में आपकी भाषा का ओज देखने योग्य है । इस नाटक में भामाशाह की स्वामिभक्ति का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है ।

(स्थान—मेवाड़ का सीमा-प्रान्त)

[आगे आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे पीछे घोड़ों पर कुछ सरदार लोग ।]

राणा—मेरे विपत्ति के सहायक भाइयों, मेरे साथ तुम लोगों ने बड़े-बड़े दुख उठाए हैं और अन्त में अब यह दिन आया कि मुझ भाग्यहीन के साथ तुम्हें भी अपनी प्यारी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी है। आहा ! सच है "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"

एक सरदार—अन्नदाता ? यह आपके कहने की बात है, क्या आप यह अपने लिए कष्ट उठा रहे हैं ? जिस जन्मभूमि की रक्षा में आप इतने दुख सह रहे हैं, क्या वह हमारी नहीं है; उसकी रक्षा करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?

राणा—पर भाई, इस अधम प्रताप के लिए जन्म भूमि की

रक्षा भी नहीं हुई ? अब तो जन्मभूमि भी शत्रुओं के हाथ में छोड़कर अज्ञात वास करने चले हैं।

सरदार—क्या हुआ पृथ्वीनाथ ! कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रताप ने सुख की चाह में अपनी जननी जन्मभूमि को यवनों के हाथ बेचा ! परमेश्वर की लीला कौन जानता है ? क्या आश्चर्य है कि ऐसा समय आवे जब कि श्रीमान अपने देश को शत्रुओं के हाथ से लौटा सकें। धर्मावतार ! उस समय आप कलङ्कित पैर से इस राजसिंहासन पर न चढ़ेंगे।

राणा—इसमें सन्देह नहीं, और फिर अपनी आँखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश में मरना अच्छा है, क्योंकिः—

"मरनो भलो विदेश को, जहाँ न अपनो कोय।
माटी खाँय जनावराँ, महा महोच्छहोय।"

एक सरदार—ठीक है।

राणा—सच है। अच्छा चलो भाइयो ! अब इस स्थान की मोह माया को छोड़ो। (आँखों में आँसू भर कर)।

"जेहि रच्छी इक्ष्वाकु सों अब लों रविकुल राज।
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज॥
तजत ताहि हैं आज प्राण सम प्यारा जोही।
हे मेवार सुखसार कृपाकरि छमियों मोही।"

(सब लोग सजल नेत्रों से बेरबेर पीछे की ओर देखते देखते घोड़ा बढ़ाते हैं और दूर से घोड़ा दौड़ाते हुए तथा हाथ उठा कर इन लोगों को रोकते हुए भामाशाह दिखाई देते हैं।)

भामाशा—(पुकार कर) ओ मेवाड़ के मुकुट ! ओ हिन्दू नाम के आश्रयदाता, तनक ठहरो, इस दास की एक विनती सुनते जाओ। भामाशा को अकेले छोड़कर मत जाओ

राणा—(घोड़ा रोक कर) भामाशा ऐसे घबराये हुए क्यों आ रहे हो ?

[भामाशा पास आ जाते हैं और घोड़े से कूद कर रोते हुए राणा के पैरों पर गिरते हैं। राणा घोड़े से कूदकर भामाशा को उठा कर छाती से लगाते हैं। दोनों खूब रोते हैं।]

राणा—मंत्रिवर ! तुम ऐसे धीर-वीर होकर आज इतने अधीर क्यों हो रहे हो ?

भामाशा—प्रभो, मेरे अधैर्य का कारण पूछते हैं ?

धिक सेवक जो स्वामि काज तज जीवन धारै।
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नहीं विचारै॥
धिक शरीर जो निज कर्त्तव्य विमुख ह्वै वंचै।
धिक धन जो तजि स्वारथ काज स्वामि हित संचै।
धिक देश शत्रु किरतघन यह भामा जीवति नहीं लजत।
जेहि अछत वीर परताप वर असहायक देशहिं तजत॥

राणा—परन्तु इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? तुमने तो अपने साध्य भर कोई बात उठा नहीं रक्खी।

भामाशा—अन्नदाता आप क्या कहते हैं ! परम स्वार्थी भामाशा ने आपके लिए किया क्या ? अरे आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करे और आप बन-बनकोर की लकड़ी चुनें तथा पहाड़ पहाड़ टकरायें ? प्रतापसिंह स्वाधीनता की रक्षा के लिए, हिन्दू नाम अकलंकित करने के लिए देशत्यागी हो और भामाशा अपने जन्म भूमि के निवास का स्वर्गोपम सुख भोगे ! जिस राणा की जूतियों के कारण भामाशा भामाशा बना है, वही राणा पैसे-पैसे को मुहताज हो। सहायता हीन होने के कारण निज देशोद्धार में असमर्थ हो, प्राणोपम जन्मभूमि को छोड़कर मरुभूमि की शरण ले और भामाशा धनाभिमानी बन

कर ऐसे उपकारो की सेवा छोड़ कर विदेशी हिन्दू नाम को कलङ्कित करने वाले, राजा की प्रजा बनकर सुख-पूर्वक कालयापन करे। धिक्कार है, ऐसे धन पर, धिक्कार है ऐसे सुख पर, धिक्कार है ऐसे जीवन पर।

राणा—पर भामाशा तुम इसमें क्या करोगे! जो भाग्य में होता है वही होता है। अब तुम क्या चाहते हो?

भामाशा—धर्मावतार आज मेरी एक विनती स्वीकार करो। बस मेरा अन्तिम प्रार्थना है।

राणा—क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है?

भामाशा—तो अन्नदाता, एक बार फिर मेवाड़ की ओर घोड़े का बाग मोड़ी जाय। इस दास के पास जो पचीस लाख रुपये की सम्पत्ति दरबार की दी हुई है उसी से फिर एक बार सेना एकत्रित की जाय और एक बार फिर मेवाड़ की रक्षा का उद्योग किया जाय। जो इसमें कृतकार्य हुए तब तो ठीक, और नहीं तो फिर जहाँ स्वामी वहीं सेवक, जहाँ राजा वहीं प्रजा।

[राणा सरदारों की ओर देखते हैं।]

भामाशा—आप इधर उधर क्या देखते हैं। क्या यह धन मेरा या मेरे बाप का है? यह तो सभी इन्हीं के चरणों के प्रताप से है।

कविराज—धन्य मंत्रिवर धन्य! यह तुम्हारा ही काम था:—

जेहि धन हित संसार बन्यों बौरों सो डोले।
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपने अनमोलै॥
जो अनर्थ को मूल. सूल हिय में उपजावे।
पिता पुत्र पित पत्नी अनुज सो अनुज छुड़ावे॥
सो सात पुरुष संचित धनहिं तृण समान तुम तजत हो।
धनि स्वामि भक्ति मन्त्री प्रकट ताहु पै तुम लजत हो॥

(बहुत से राजपूत और भालों का कोलाहल करते हुए प्रवेश)

सब—महाराज, हम लोगों को छोड़कर आप कहाँ जा रहे

हैं ? चलिए एक बार और लौट चलिए, जब हम सब कट मरें तब आपका जिधर जी चाहे पधारें !

राणा—जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या।

चारों ओर से "महाराणा की जय" "हिन्दू पति की जय" आदि पुकारते हुए लोग उमङ्गपूर्वक उछलते हैं ।

प्रश्न

१—भामाशा कौन थे और उन्होंने अपने देश के उद्धार के लिए क्या किया ?

२—महाराणा प्रताप का चरित्र वर्णन करो ।

३—विदेश और परदेश में क्या अन्तर है !

४—विदेश में मरना क्यों अच्छा है ?

५—देशोद्धार के लिए भामाशा ने प्रतापसिंह को क्या कहा था ?

६—धन की वास्तविक उपयोगिता क्या है ?

१७—आदर्श बदला

[लेखक—श्रीयुत सुदर्शन]

[ये पंजाब प्रांत के रहने वाले और हिन्दी के प्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं । इनकी लिखी हुई कहानियाँ हिन्दी-साहित्य में बड़े सम्मान के साथ पढ़ी जाती हैं । इनकी कहानियाँ बड़ी सुन्दर और कला-पूर्ण होती हैं । इनकी कहानियों के दो-तीन संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं । इनकी यह कहानी बड़ी उपदेश-प्रद है । इसकी भाषा रोचक और कथानक आदर्श-पूर्ण है ।]

[१]

प्रभात का समय था, जीवन की रश्मियाँ आकाश से बरसती

हुई प्राणीमात्र में नवीन उमंगों का संचार कर रही थी। बारह घंटों के लगातार संग्राम के अनंतर प्रकाश ने अंधकार पर विजय प्राप्त की थी। इस आनन्द में बाग़ के फूल झूम रहे थे और पक्षीगण मधुर संगीत में मस्त थे। वृक्षों की शाखाएँ सुगंधित पवन में खेलती थीं और पत्ते हर्ष से तालियाँ बजाते थे। प्रकाश का राज्य था और सर्वत्र आनंद की वर्षा हो रही थी।

इतने में साधुओं की एक मंडली नगर के अंदर पधारी होकर ये स्वतन्त्र-प्रकृति ईश्वर के भक्त और हरि-भजन में मतवाले हुए, संसार का परित्याग कर चुके थे और अपवर्ग की इच्छा से मन की वासनाओं को इधर-उधर न भटकने देते थे। मन बड़ा चंचल है, यदि काम न हो तो इधर-उधर भटकने लगता है और अपने स्वामी को विनाश के मार्ग में फँसा कर मार डालता है। इसे भक्तिकी जंजीरों से जकड़ देना चाहिए, नहीं तो सर्प बनकर डस लेता है और बिच्छू बनकर काट खाता है।

जो संसार को त्याग चुके थे उनको सुर-ताल की क्या परवाह थी। कोई ऊपर चढ़ाता था—कोई मुँह से गुनगुनाता था। ये अपने राग में मगन थे; कि सिपाहियों ने आकर घेरा डाल दिया और हथकड़ियाँ पहना कर उन्हें दरबार-अकबरी*को ले चले। इस समय आगरे के सिंहासन पर अकबर था और उसके प्रसिद्ध गवैये तानसेन ने ये आज्ञाएँ दिला रक्खी थी कि जो मनुष्य गान-विद्या में मेरी बराबरी न कर सके वह आगरे की सीमा के अन्दर गा न सके और जो गाए उसके प्राण लिए जाएँ। बेचारे वनवासी साधुओं को पता न था। परंतु अज्ञानता भी एक अपराध। अभियोग दरबार में पेश हुआ। तानसेन ने गान-विद्या के कुछ प्रश्न किए, साधु उत्तर में मुँह ताकने लगे।

---

* उर्दू ढङ्ग का समास; अकबरी-दरबार।

अकबर के होंठ हिले और सबके सब साधु तानसेन की दया पर छोड़ दिए गये। उसमें दया का भाव निर्बल था; सँभाल न सका। मृत्यु-दंड की आज्ञा हुई। केवल एक दस वर्ष का बालक छोड़ा गया।—बालक है, इसका दोष नहीं; यदि है भी, तो क्षमा के योग्य है।

[२]

बालक रोता हुआ आगरे के बाज़ारों से निकला और सिर पीटता हुआ जङ्गल में जाकर अपनी कुटिया में लेट कर तड़पने लगा—बाबा! तू कहाँ है! अब कौन मुझे प्यार करेगा और कौन मुझे भक्ति का मार्ग बतलाएगा? मेरा बाबा छीन लिया और मुझे इस अथाह संसार में अनाथ बनाकर छोड़ दिया। बाबा तू कहा करता था कि संसार में पद पद पर दलदल है और चप्पे चप्पे पर कन्टकावृत झाड़ियाँ हैं, जहाँ मनुष्य फिसल जाता है और काँटों में उलझ जाता है। अब मेरा कौन पालन-पोषण करेगा और इन घोर संकटों से रक्षा करेगा। इन्हीं विचारों में डूबा हुआ बालक देर तक रोता रहा। इतने में खड़ाऊँ पहने हुए, हाथ में माला लिए, हुएराम राम, जपते, बाबा शंकरानंद कुटिया के अंदर आए और कहने लगे—बैजू बेटा! शांति ग्रहण करो। बैजू घबरा कर उठा और नवागत महात्मा के चरणों से लिपट गया। दुख में कोई यदि तनिक-सी भी सहानुभूति प्रकट करे तो आँसुओं की धारा बहने लगती है। बिलख-बिलख कर रोते हुए बैजू ने कहा—महाराज! मेरे साथ अनर्थ हुआ है, मुझ पर वज्र गिरा है।

शंकरानंद बोले—शांतिः शांतिः।

बैजू रोते हुए बोला—महाराज! तानसेन ने मुझे तबाह कर दिया।

शंकरानंद ने कहा—शांतिः शांतिः।

बैजू ने चरणों से लिपट कर कहा—महाराज ! शांति जा चुका। अब मुझे प्रतिहिंसा की इच्छा है, प्रतीकार की आकांक्षा है।

शंकरानंद ने फिर कहा— बेटा शांतिः शांतिः।

बैजू न अश्रु परिप्लुत नेत्रों को ऊपर उठाया और बाबा जी की ओर देखा, फिर कुछ विंदु आँसुओं के टपकाए। जो कार्य वाणी नहीं कर सकती, उसे दृष्टि कर देती है और जहाँ दृष्टि भी असमर्थ हो जाती है वहाँ आँसू काम देते हैं। यह दो अंतिम शस्त्र हैं। इन्हीं का प्रयोग करके बैजू ने नेत्र झुका दिया।

शंकरानंद के धैर्य की भीति आँसुओं को बौछार न सह सकी, कांप कर गिर गई। उन्होंने बैजू को उठाकर हृदय से लगाया और कहा—तुझे वह शस्त्र दूँ जिससे तू अपने पिता की मृत्यु का बदला ले सके।

बैजू उछल पड़ा और बोला—कहाँ है वह शस्त्र।

शंकरानंद ने कहा—उसके लिये दस वर्ष तपस्या करनी होगी।

बैजू ने कहा— मैं इस समय अंधा हो रहा हूँ। दस वर्ष क्या मैं अपने को अनंत जन्म प्रतिहिंसा की वेदी पर बलिदान कर सकता हूँ। विपत्तियाँ उठाऊँगा, कष्ट सहूँगा, भक्ति करूँगा' तप करूँगा; परंतु वह शस्त्र अवश्य लूँगा, जिससे प्रतिहिंसा की अग्नि शांत हो जाय। क्या केवल दस वर्ष के पश्चात् वह मिल जायगा ?

शंकरानंद ने कहा—हाँ।

बैजू झुक गया—स्वर्गीय दूत ! तेरा उपकार आजन्म न भूलूँगा।

[३]

ऊपर की घटना को बारह वर्ष बीत गए। जगत् में बहुत से परिवर्तन हो गये, कइ बस्तियाँ उजड़ गईं, बन बस गये, बूढ़े मर गये, नवीन व्यक्ति उत्पन्न हो गए, जो तरुण थे, उनके केश श्वेत हो गए।

बैजू बावरा तरुण हो चुका था और गान-विद्या में दिन पर दिन आगे बढ़ रहा था। उसके स्वर में जादू भर चुका था और तान में एक आश्चर्यमयी मोहिनी आ गई थी। गाता था तो पत्थर तक पिघल जाते और पक्षी तक मुग्ध हो जाते थे। सुननेवाले स्तब्ध होकर खड़े रह जाते थे। एक दिन शंकरानंद ने हँस कर कहा—मेरे पास जो कुछ था, तुझे दे डाला। बैजू! तू पूर्ण गंधर्व हो गया है, अब मेरे पास और कुछ नहीं है। बैजू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कृतज्ञता का भाव आँसुओं के रूप में बह निकला; चरणों पर सिर रखकर बोला—महाराज! आपका उपकार जन्म भर सिर से न उतरेगा। शंकरानंद सिर हिलाकर कहने लगे—यह नहीं, कुछ और।

बैजू ने कहा—महाराज कहें।

शंकरानंद बोले—प्रतिज्ञा करो।

बैजू ने बिना कुछ सोचे-विचारे कह दिया, प्रतिज्ञा करता हूँ कि शंकरानंद ने वाक्य को पूरा किया—इस राग विद्या से किसी को हानि न पहुँचाऊँगा। बैजू का रक्त सूख गया, पैर लड़-खड़ाने लगे और कामनाओं की वाटिका सूखती हुई दिखाई दी। बारह वर्ष के परिश्रम पर पानी फिर गया। प्रतिहिंसा की छुरी हाथ आई तो गुरु ने एक प्रतिज्ञा लेकर कुंद कर दी। बैजू ने होंठ काटे, दाँत पीसे, वह रक्त का घूँट पीकर रह गया।

[४]

एक सुन्दर नवयुवक साधु आज आगरे के बाज़ारों में गाता

हुआ जा रहा है। दूकानदारों और राहगीरों ने समझा कि मृत्यु इसके सिर पर खेल रही है। वे उठे कि उसे नगर की आज्ञाओं से सूचित करें, परन्तु निकट पहुँचने से पूर्व ही मुग्धपूर्वस्था को प्राप्त होकर अपने आपको भूल गए और किसी का साहस न हुआ कि उससे कुछ कहे। यह समाचार नगर में दावानल के समान फैल गया कि साधु रागी आया है जो बाज़ारों में गा रहा है।

सिपाहियों ने हथकड़ियाँ सँभाल लीं और पकड़ने के लिए साधु की ओर आए, परन्तु पास आना था कि रङ्ग पलट गया। साधु के मुख-मंडल से तेज की रश्मियाँ फूट-फूट कर निकल रही थीं, जिनमें जादू था, मोहनी थी और मुग्ध करने की शक्ति थी। सिपाहियों को न अपनी सुधि रही, न हथकड़ियों की, न अपने बल की, न अपने कर्त्तव्य की। वे आश्चर्य से उसके मुख की ओर देखने लगे, जहाँ सरस्वती का वास था और जहाँ से संगीत की मधुर ध्वनि की धारा बह रही थी।

साधु मस्त था और सुननेवाले मस्त थे। गाते-गाते साधु भी धीरे-धीरे चलता जाता था और श्रोताओं का समुद्र भी शनैः शनैः तरङ्गित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो एक समुद्र है जिसे नवयुवक साधु नालों की जंजीरों से खींच रहा है और संकेत से अपने साथ-साथ आने की प्रेरणा कर रहा है।

मुग्ध जन-समुदाय चलता गया, परन्तु पता नहीं की किधर को। जब एकाएक गाना बन्द हो गया, जादू का ताँता टूट गया, तब लोगों ने देखा कि तानसेन के महल के आगे खड़े हैं। उन्होंने दुःख और पश्चात्ताप से हाथ मले—हाय रे! यह कहाँ आ गए। साधु अज्ञान से ही मृत्यु के द्वार पर आ पहुँचा। महाकाय कृष्णफणि के मुख-विवर में पक्षीगण अपने आप ही खिंचे चले जाते हैं। तानसेन बाहर निकला, नागरिक जनता के एक

दल को देखकर वह विस्मित हुआ और फिर समझ कर बोला—हाँ, आपके सिर पर आज कदाचित् मृत्यु सवार हो रही है। नवयुवक साधु मुसकराया—जी हाँ, मेरी आपके साथ गान-विद्या पर चर्चा करने की अभिलाषा है।

तानसेन ने बेपरवाही से उत्तर दिया—हाँ अपनी इच्छा पूरी करो। इस समय सिपाहियों को अपनी हथकड़ियों का ध्यान आया। झनकारते हुए आगे बढ़े और उन्होंने नवयुवक साधु के हाथों में पहना दी, भक्ति का ताँता टूट गया, श्रद्धा के भाव पकड़े जाने के भय से उड़ गए और लोग इधर-उधर भागने लगे। सिपाही कोड़े बरसाने लगे और लोगों के तितर-बितर हो जाने के पश्चात् नवयुवक साधु को दरबार की ओर ले चले। दरबार की ओर से शर्तें सुनाई गईं कि कल प्रातःकाल नगर के बाहर वन में तुम दोनों का गान-युद्ध होगा। यदि तुम हार गए तो तुम्हें मार डालने का तानसेन को पूर्ण अधिकार होगा और यदि तुमने उसे पराजित किया तो उसका जीवन तुम्हारे हाथ में होगा।

नवयुवक साधु ने शर्तें स्वीकार की और अदालत ने आज्ञा दी कि कल प्रातःकाल तक पुलिस की रक्षा में रहो।

पाठक समझ ही गए होंगे कि यह नवयुवक साधु बैजू बावरा ही था।

[५]

भगवान भास्कर की पहली किरण ने आगरे की जनता को नगर के बाहर भागते देखा। साधु की प्रार्थना पर सर्वसाधारण को भी उसके जीवन और मृत्यु का कौतुक देखने की आज्ञा दी गई थी। साधु की विद्वता की धाक दूर-दूर तक फैल चुकी थी। जो कभी अकबर की भी सवारी के देखने को घर से बाहर न निकले थे, जिन्होंने कभी बड़े-बड़े त्यौहारों पर भी बाहर आना

पसंद न किया था, आज वे भी नई पगड़ियाँ घोट-घोट कर बाँध रहे थे।

ऐसा जान पड़ता है कि आज नगर से बाहर, वन में, नूतन नगर बस जाने को है—जहाँ कनातें लगी थीं, चाँदनियाँ तनी थीं और कुर्सियों की शृङ्खला सजी थी। इधर जनता बढ़ रही थी और उद्विग्नता और धीरता से गान-युद्ध के समय की प्रतीक्षा कर रही थी। बालक को प्रातःकाल मिठाई मिलने की आशा दिलाई जाय तो वह रात्रि को कई बार उठ-उठ कर देखता है कि अभी सूर्य निकला है या नहीं।

दस बज गये। लोगों ने दृष्टि ऊपर उठाई, अकबर सिंहासन पर था, साथ ही नीचे तानसेन बैठा था और सामने फर्श पर नवयुयक बैजू बावरा दिखाई देता था।

अकबर ने घंटी बजाई और तानसेन ने कुछ प्रश्न संगीत-विद्या के संबध में बैजू बावरे से किए। बैजू ने उचित उत्तर दिए और लोगों ने हर्ष से तालियाँ बजाईं। मुख से "जय हो' जय हो" बलिहारी है' की ध्वनि निकलने लगी। मारने वाले मास्टर को यदि इंसपेक्टर झाड़ दे तो बालक प्रसन्न हो जाते हैं।

बैजू बावरे ने सितार हाथ में लिया और उसके पर्दों को हिलाया तो जनता ब्रह्मानन्द में डूब गये। वायु रुक गयी और सुनने वाले मंत्रमुग्धवत् सुधिहीन हुई सिर हिलाने लगे। बैजू बावरे की उँगलियाँ सितार पर दौड़ रही थीं। उन तारों पर राग की विद्वत्ता निछावर हो रही थी और लोगों के मन चकोर की नाईं उछल उछल रहे थे। लोगों ने देखा और आश्चर्य-चकित होकर रह गये, कि हरिण छलांगे मारते हुए आये और बैजू बावरे के पास खड़े हो गये, बैजू बावरा सितार बजाता रहा—बजाता रहा—बजाता रहा।

हरिण मस्त थे। बैजू बावरे ने सितार हाथ से रख दिया और अपने कंठ से फूल-मालाओं को उतार कर उन्हें पहना दिया। फूलों के स्पर्श से हिरणों को सुधि आई और वे चौकड़ी भरते हुए भाग कर वृक्षों में छिप गये। बैजू ने कहा—तानसेन! फूल मालाओं को अब यहाँ फिर मँगवाइये, तब मैं आपको संगीतविद्या में पूर्ण मानूँ।

तानसेन सितार हाथ में लेकर आपनी पूर्ण प्रवीणता के साथ बजाने लगा। ऐसा अच्छा सितार उसने अपने जीवन में कभी नहीं बजाया था। सितार के साथ वह स्व ं-सितार बन गया और पसीना पसीना हो गया। उसको अपने तन की सुधि न था और सितार के सिवा संसार में उसके लिए और कुछ न था। आज उसने वह राग बजाया जो कभी न बजाया था। मृत्यु की दौड़ थी और सिरों की बाजी लग रही थी!

बहुत समय बीत गया। उँगलियाँ दुखने लगीं' लोगों ने आज तानसेन का गाना पसन्द न किया। सूर्य्य और पटवीजने की तुलना ही क्या है!

बहुत चेष्टा करने पर भी जब कोई हरिण न आया तब तानसेन की आँखों के सामने मृत्यु नाचने लगीं, देह पसीना पसीना हो गई और लज्जा से मुख-मण्डल तमतमा उठा। वह खिसियाना होकर बोला—हरिण तो अकस्मात् इधर आ निकले थे। राग का प्रभाव न था। साहस है तो अब दोबारा बुलवाओ।

बैजू बावरा मुस्कराया और धीरे से बोला—बहुत अच्छा यह कहकर उसने फिर सितार पकड़ लिया। एक बार फिर संगीत-लहरी वायु-मंडल में लहराने लगी और फिर सुनने वाले संगीत-सागर की तरंगों में डूबने लगे। हरिण बैजू बावरे के पास फिर वही हरिण जिनकी ग्रीवाओं में फूल मालाएँ पड़ी

हुई थीं और जो राग की सुरीली ध्वनि के आकर्षण से बुलाए गये थे। बैजू बावरे ने मालाएँ उतार लीं और हरिण कूदते हुये लोप हो गये।

अकबर का तानसेन के साथ अगाध प्रेम था। जब उसकी मृत्यु निकट देखी तो कन्ठ भर आया, परन्तु प्रतिज्ञा हो चुकी थी। वह विवश होकर उठा और संक्षेप में निर्णय सुनाया गया—"बैजू बावरे की विजय और तानसेन की पराजय"।

तानसेन काँपता हुआ आगे बढ़ा। वह, जिसने अपने से हारे हुए किसी को मृत्यु के घाट उतारते हुए दया न की थी, उस समय दया के लिये प्रार्थना करने लगा।

बैजू बावरे ने कहा—मुझे प्राण लेने की इच्छा नहीं,तुम इस निष्ठुर नियम को तुड़वा दो, कि 'जो कोई आगरे की सीमाओं के अन्दर गाए; यदि तानसेन से घट कर हो तो मरवा दिया जाय।' अकबर ने अधीर होकर कहा—यह नियम अभी इसी क्षण से उठता है। तानसेन बैजू बावरे के चरणों पर गिर पड़ा और दीनता से कहने लगा यह उपकार जीवन भर न भूलूंगा

बैजू बावरे ने उत्तर दिया—बारह वर्ष की बात है। तुमने मेरे पिता के प्राण लिए थे, यह उसी का बदला है।

प्रश्न

१—इस कहानी का सारांश अपनी रोचक भाषा में लिखो।
२—इस कहानी से तुम्हें कौनसी शिक्षा मिलती है ?
३—बैजू कौन था, उसने संगीत-विद्या किस प्रकार प्राप्त की ?
४—तानसेन कौन था, उसके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?
५—शंकरानन्द कौन थे, उनका सूक्ष्म परिचय दो।
६—सिपाहियों ने नवयुवक को क्यों बन्दी कर लिया ?

७—तानसेन और बैजू बावरे के संगीत-युद्ध का वर्णन संक्षेप में करो।

८—बैजू ने तानसेन को किस प्रकार हराया ?

९—तानसेन बैजू के चरणों पर क्यों गिर पड़ा ?

१८—लड़कियों के खेल

[ले० श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर]

[आप हिन्दी की सुलेखिका हैं। गार्हस्थ्य जीवन सम्बंधी आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। पहले आप प्रयाग में रहती थीं; पर आज कल आप कानपुर में रहती हैं। आप एक उदार काश्मीरी महिला हैं। आपको हिन्दी से अत्यधिक प्रेम है आपका साहित्य महिलाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। आपका प्रस्तुत लेख अत्यन्त सुन्दर।]

हमारे ही देश में नहीं बल्कि सारे संसार में कुछ दिन पहले स्त्रियाँ और लड़कियाँ सभी बातों से अलग रखी जाती थीं। वे परदे में रखी जाती थीं, घर के सिवा वे और कुछ जानने न पाती थीं, उनके लिए पढ़ने-लिखने की ज़रूरत न थी नौकरी चाकरी की जरूरत न थी।

लेकिन अब वह समय नहीं है। आज दुनियाँ के सब देशों में स्त्रियाँ अपनी उन्नति कर रही हैं। उनके लिए जो बन्धन थे, वे अब टूट रहे हैं। हर एक देश में स्त्रियों के लिए शिक्षा बढ़ रही है। वे घरों के सिवा बाहरी बातों की भी जानकार हो रही हैं। ज़िन्दगी की जिन बातों का ज्ञान आदमियों को होना चाहिये उन बातों में स्त्रियों का भी अधिकार हो रहा है।

इन सब बातों के साथ-साथ स्त्रियाँ अपनी खूब उन्नति कर रही हैं। उनके लिए जो स्कूल और कालिज खुले हैं, उनमें पढ़ाई

का ढङ्ग इस तरह बदला जाता है, जिससे उनको आगे बढ़ने का मौका मिले। उनको तन्दुरुस्त रहने की बातें सिखाई जाती हैं, शरीर को खूबसूरत और ताकतवर बनाने के ढङ्ग बताये जाते हैं, इन्हीं सब बातों के लिए लड़कियों और स्त्रियों में खेलों और व्यायामों का प्रचार हो रहा है।

जिन्दगी में जिस तरह और बातों की जरूरत है उसी तरह खेलों और व्यायमों की भी जरूरत है। इनके ज़रिये से शरीर को तन्दरुस्त और खूबसूरत बनाने में मदद मिलती है, रोगों से शरीर की रक्षा होती है इत्यादि। इनसे सकड़ों हजारों लाभ हैं जिनके बिना शरीर मिट्टी में मिल जाता है।

संसार के सभी देशों में खेलों का खूब आदर हो रहा है। उनसे जो फ़ायदे हैं, उन पर प्रति दिन लोगों का विश्वास बढ़ता जाता है। इसलिए स्कूलों और कालिजों में खेलों का खूब प्रचार हो रहा है। मैं देखती हूँ कि आजकल संसार में जितनी ही शिक्षा बढ़ती जाती है, उतना ही अधिक खेलों का प्रचार हो रहा है।

इस बात को संसार के बड़े-बड़े विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है कि लड़कों और मर्दों के लिए जितनी खेलों की जरूरत है उतनी ही जरूरत लड़कियों और स्त्रियों के लिए भी है। इनके द्वारा लड़कियों और स्त्रियों में आजादी का भाव बढ़ता ही जाता है। उनके दिलों में प्रसन्नता बढ़ती है, उनकी आत्मा बलवान होती है। इन सब बातों को अगर मनुष्य की जिन्दगी से अलग कर दिया जाये तो वह एक मुर्दा की दशा में हो जाता है। इस मुर्दनी को सदा बचाने की जरूरत है और इसकी सब से उत्तम दवा केवल खेल है। इसलिए आज पढ़े, लिखे आदमियों ने अपने घरों पर लड़कियों और स्त्रियों के लिए तरह-तरह के खेल जारी किये हैं।

खेल से दो प्रकार के लाभ हैं। इनसे जी बहलता है, खूब हसने को मिलता है और इन बातों में हमारी तन्दुरुस्ती को भीतरी लाभ पहुँचता है। दूसरा लाभ यह होता है कि खेल इस प्रकार का व्यायाम है, जिससे शरीर को फायदा होता है। खून शुद्ध होता है और शरीर में उत्साह आता है, इसलिए इस प्रकार के खेल होना चाहिए जो दोनों प्रकार के फायदे पहुँचाने वाले हों।

अभी तक स्कूलों में ही लड़कियों को खेल खेलाये जाते हैं, लेकिन खाली स्कूल से ही काम न चलेगा। खेल घरों पर भी होने चाहिये।

जिनके घर बड़े हैं उनको तो सब प्रकार का सुभीता है लेकिन जिनके घर छोटे हैं उनको सब प्रकार का सुभीता नहीं है। इसलिए इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि खेल का स्थान कैसा है। खेल का स्थान इस प्रकार का होना चाहिये।

(१) खेलने का स्थान खुला हो और स्वच्छ ताजी वायु खूब मिलती हो।

(२) वहाँ पर किसी प्रकार की गन्दगी न हो, जिससे वायु खराब हो सकती हो।

(३) जिन बातों से स्त्रियों और लड़कियों के खेलने में गड़बड़ी हो सकती हो वे वहाँ न हों।

जिनके घरों में इस प्रकार के बन्धन हों वे पड़ोस मेलजोल में स्त्रियों और लड़कियों के साथ खेला करें और ऐसे स्थान में खेलें जहाँ इस प्रकार का सुभीता हो।

आलू चम्मच—इस खेल में खेलने वालों की संख्या दस या इससे अधिक होती है। खेल में जितनी टोलियाँ बनाई जाती हैं उतनी ही चम्मच होती है और जितनी खेलनेवाली होती हैं उतने ही आलू रक्खे जाते हैं।

खून शुद्ध होता है और शरीर में उत्साह आता है, इसलिए इस प्रकार के खेल होना चाहिए जो दोनों प्रकार के फायदे पहुँचाने

आलू इतने बड़े होने चाहिये कि चम्मच के अन्दर आ जाय खेलनेवाली लड़कियों को पहले बराबर कई टोलियों में बाँट देना चाहिये। फिर उनको दो दो गज के फासले पर एक कतार में खड़े करने चाहिये और हर एक टोली में आगे वाली लड़की को एक चम्मच दे देना चाहिये और जिनको चम्मच दिया है उनके खड़े होने को लाइन से २० गज दूरा पर एक सीधी रेखा खींच देनी चाहिये और हर एक टोली में जितनी लड़कियाँ और स्त्रियाँ हों उतने ही आलू इस टोली के सामने दो गज की दूरी पर रख देना चाहिये और आगे खिंची हुई लाइन पर एक हंडिया या टोकरी रख देनी चाहिये जिसमें आलू डाले जायँ।

इतनी तैयारी हो चुकने पर टोली की अगली लड़की या स्त्री आज्ञा पाते ही तेज़ी के साथ चम्मच में एक आलू उठायेगी और इस हँडिया या टोकरी में उसे डाल देगी। इसके बाद वे अपने अपने चम्मच अपने पीछे वाली लड़की या स्त्री को दे देगी और हटती जायँगी। इसी प्रकार अब दूसरी लड़कियाँ बारी बारी से चम्मच में आलू लेकर टोकरी में डलेंगी। इसी तरह जो टोली सबसे पहले अपना काम खतम कर लेगी उसी की जीत होगी। खेलते समय इस बात की हिदायत होनी चाहिये कि आलू को चम्मच से ही उठाया जाय और किसी चीज़ से न छुआ जाय। अगर उठाते समय चम्मच से आलू गिर जाय तो उसे चम्मच से ही फिर उठाना चाहिये।

चोर और शाह—इस खेल में बारह या बारह से अधिक किन्तु, सम संख्या में लड़कियाँ होनी चाहिए। एक डोरी और एक खरिया होनी चाहिए। अब जितनी लड़कियाँ और स्त्रियाँ हों, उनमें से दो को निकालकर दो टोलियों में बाँट देना चाहिये। अब खरिया और डोरी लेकर एक ही केन्द्र से आगे और पीछे दो घेरे खींच लो। इसके बाद एक टोली की लड़कियाँ भीतर के

घेरे पर और दूसरी टोली के बाहर के घेरे पर केन्द्र की तरफ मुँह करके लड़कियों के ठीक पीछे खड़ी हों। अब जो दो लड़कियाँ अलग की गई हैं, उनमें से एक का नाम चोर और दूसरी का शाह रखना चाहिये।

अब कोई लड़की या स्त्री सीटी लेकर बजा दे। इसके बजते ही शाह चोर को पकड़ने के लिये दौड़े। इस पर चोर जिस लड़की के सामने चाहे जाकर खड़ी हो जाय। पीछे वाली लड़की जो बाहर के घेरे पर है वह चोर हो जायगी और वह भागेगी इस पर शाह लड़की उसका पीछा करेगी। इस प्रकार थोड़ी देर तक इस खेल को जारी रखना चाहिये। जब शाह लड़की चोर को छू लेगी तब चोर शाह बनेगी और शाह चोर बनकर छूने से बचने की कोशिश करेगी। इस खेल में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिये—

१—चोर लड़की या स्त्री को घेरे से दूर न भागना चाहिये।

२—चोर लड़की को जल्दी लड़कियों के सामने जाकर खड़ी होना चाहिये, जिससे सब लड़कियों को दौड़ने का मौका मिले।

३—इस खेल को अगर और भी कठिन बनाना हो तो अन्दर वाले घेरे की लड़कियाँ बाहर वाले घेरे की लड़कियों की तरफ मुंह करके खड़ी हो जाँय। अब जो चोर लड़की हो वह इन दोनों के बीच में आकर जिसकी तरफ चाहे पीठ करके खड़ी हो सकती है। जिसके सामने वह लड़की खड़ी हो उसे तुरन्त भागना चाहिये।

४—यदि खेलने वालियों की संख्या कम हो तो एक ही घेरे में यह खेला जा सकता है। जिस लड़की के सामने चोर लड़की खड़ी हो जाय,उसे पीछे वाली को चोर बनाकर भागनाचाहिए।

अन्धा सीटी—इस खेल में जितनी लड़कियाँ खेल सकती उनके लिये दो रूमाल, खरिया मिट्टी, एक रस्सी और सीटी

होनी चाहिए। रस्सी और खरिया मिट्टी से खेलने वालियों की संख्या के अनुसार बड़ा या छोटा गोल घेरा खींच लेना चाहिए।

अब दो लड़कियों को निकाल कर बाकी सब को घेरे पर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर खड़े होना चाहिये। दो लड़कियाँ जो निकाली गई हैं, उनकी आँखों पर रूमाल बाँधना चाहिये। इनमें से एक को सीटी देना चाहिये।

अब सीटी वाली लड़की बार-बार सीटी को बजाये और दूसरी लड़की आवाज के सहारे उसे पकड़ने की कोशिश करे। सीटी बजाने वाली लड़की जिस प्रकार चाहे अपने को छूने से बचायेगी। घेरे से बाहर किसी को न जाना चाहिये। सीटी जल्दी जल्दी बजाना चाहिये। जब सीटी बजानेवाली लड़की पकड़ ली जाय तब दोनों की आँखे खोल देनी चाहिये और उनको घेरे में शामिल कर देना चाहिये। इसके बाद दूसरी दो लड़कियों को घेरे से निकाल कर और आँखों में पट्टी बाँध कर उसी प्रकार खेल कराना चाहिये।

इस खेल को यदि दूसरी तरह से खेलना हो तो दो लड़कियों की जगह पाँच छः लड़कियों की आँखों में पट्टियां बांधनी चाहिए और जगह लड़की को सीटी बजाने को देनी चाहिए। सीटी बजाने वाली को सब पट्टी बँधी लड़कियां छूने की कोशिश करेंगी।

प्रश्न

१—खेल-कूद और कसरत से क्या लाभ है?

२—खेलने का स्थान कैसा होना चाहिये?

३—इस पाठ के पढ़ने से किन-किन खेलों का अनुभव होता है।

४—क्या तुम बता सकती हो कि खेल और व्यायाम में स्त्रियों ने क्या उन्नति की है ?

५—तुम्हारी सम्मति में कौन सा खेल अच्छा है।

६—नीचे के शब्दों को पाठ से देखकर पद-परिचय करो:— संसार, समय, ज्ञान और शरीर।

१—सागर और मेघ

[ले०—श्री राय कृष्णदास]

[आप काशी के रहने वाले हैं। आपका जन्म सन् १८९२ ई० में हुआ। आप अग्रवाल हैं। बाल्यावस्था से ही आपको साहित्य-सेवा का शौक है। आप कविता, कहानी, गद्यगीत आदि सब कुछ बड़ी सफलता पूर्वक लिखते हैं। आपकी शैली बड़ी सुन्दर और सजीव होती है। हिन्दी के लेखकों में आपका अच्छा स्थान है। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं।]

सागर—मेरे हृदय में मोती भरे हैं!

मेघ—हाँ वे ही मोती जिनका कारण है—मेरी बूंदे।

सागर—हाँ, हाँ, वही बारि जो मुझसे हरण किया जाता है। चोरी का गर्व।

मेघ—हाँ, हाँ, वही जिसको मुझसे पाकर बरसात की उमड़ी नदियाँ तुझे भरती हैं।

सागर बहुत ठीक। क्या आठ महीने नदियाँ मुझे कर नहीं देती ?

मेघ -(मुसकराया) अच्छी याद दिलाई। मेरा बहुत सा दान वे पृथ्वी के पास धरोहर रख छोड़ती हैं, उसी से कर देने की निरंतरता कायम रहती है।

सागर—वाष्पमय शरीर! क्या बढ़-चढ़ कर बातें करता है। अंत को नीचे गिर कर मुझी में मिलना पड़ेगा।

मेघ—खार की खान! संसार भर से नीच! सारी पृथ्वी के विकार! तुझे मैं शुद्ध और मिष्ठ कर उच्चतम स्थान देता हूँ। फिर तुझे अमृतवारि-धारा से तृप्त और शीतल करता हूँ। उसी का यह फल है।

सागर—हाँ, हाँ, दूसरे की करतूत पर गर्व। सूर्य का यश अपने पल्ले।

बादल—(अट्टहास करता है) क्यों मैं चार महीने सूर्य को विश्राम जो देता हूँ। वह उसी के विनिमय में यह करता है उसका यह कर्म मेरी संपत्ति है। वह तो बदले में केवल विश्राम का भागी है।

सागर—और मैं जो उसे रोज विश्राम देता हूँ।

मेघ—उनके बदले तो वह तेरा जल शोषण करता है।

सागर—तब भी मैं अपना व्रत नहीं छोड़ता।

मेघ—(इठला कर)धन्य वे व्रती, मानो, श्रद्धापूर्वक तू सूर्य को वह दान देता हो। क्या तेरा जल वह हठात नहीं हरता ?

सागर—(गंभीरता से) और बाड़व जो मुझे नित्य जलाया करता है; तो भी मैं छाती से लगाए रहता हूँ। तनिक उस पर तो ध्यान दो।

मेघ—(मुसकरा दिया) हाँ, उसमें तेरा और कुछ नहीं शुद्ध स्वार्थ है। क्योंकि वह तुझे यदि जलाता न रहे तो तेरी मर्यादा न रह जाय।

सागर—(गरज कर) तो उसमें मेरी क्या हानि! हाँ, प्रलय अवश्य हो जाय।

मेघ—(एक साँस लेकर) आः यह हिंसा-वृत्ति। और क्याः मर्यादा-नाश क्या कोई साधारण बात है—

सागर—हो,हुआ करे। मेरा आयास तो बढ़ जायगा।

मेघ—आः उच्छृङ्खलता की इतनी बड़ाई ?

सागर—अपनी ओर तो देख जो बादल होकर आकाश भर में इधर से उधर मारा-मारा फिरता है।

मेघ—धन्य तुम्हारा ज्ञान। यदि सारे आकाश में घूम फिर के संसार का निरीक्षण न करूँ और जहाँ आवश्यकता हो जीवन दान न करूँ तो रसा नीरसा हो जाय, उर्वरा से वंध्या हो जाय। तू नीचे रहने वाला हम ऊपर रहने वालों के इस तत्व को क्या जाने।

सागर—यदि तू मेरे लिये ऊपर है तो मैं भी तेरे लिये ऊपर हूँ; क्योंकि हम दोनों का आकाश एक ही है।

मेघ—हाः निस्संदेह ऐसी दलील वे ही लोग कर सकते हैं जिनके हृदय में कङ्कड़ पत्थर और शंख घोंघे भरे हैं।

सागर—बलिहारी तुम्हारी बुद्धि की जो रत्नों को कङ्कड़-पत्थर और मोतियों को सीप-घोंघे समझते हो।

मेघ—(बड़े वेग से गड़ गड़ कर के हँसता हुआ) तुम्हारे रत्न तो तुम्हें मथ कर कभी के देवताओं ने निकाल लिये।

अब तुम इन्हीं को रत्न समझे बैठे हो।

सागर—और मनुष्य जो इन्हें निकालने के लिये नित्य इतना श्रम करते हैं तथा इतने प्राण खोते हैं।

मेघ—वे अमीरों की झूठी स्पर्धा करने में मरे जाते हैं।

सागर—अच्छा! जिनका स्वरूप प्रतिक्षण बदला करता है उनकी दलील का कोटिक्रम ऐसा ही होता है।

मेघ—और जो क्षण भर भी स्थिर नहीं रह सकते उनकी तर्कना का नमूना तुम्हारी बातें हैं क्यों न ?

सागर—अरे अपनी सीमा में रमने की मौज को अस्थिरता समझने वाले मूर्ख। तू ढेर-सा हल्ला ही करना जानता है कि

मेघ—हाँ मैं गरजता हूँ तो बरसता भी हूँ, तू तो……

सागर—यह भी क्यों नहीं कहता कि बज्र भी निपतित करता हूँ।

बादल— हाँ, आततायियों को समुचित दंड देने के लिये।

सागर—कि स्वतंत्रों का पक्ष छेदन करके उन्हें अचल बनाने के लिये ?

बादल—हाँ, तू संसार को दलित करने वाले उच्छृंखलों की पक्ष क्यों न लेगा; तू तो उसे छिपाता है न।

सागर मैं दीनों को शरण अवश्य हूँ।

बादल—सच है अपराधियों के सङ्गी! यही दीनों की सहायता है कि संसार के उत्पातियों और अपराधियों को जगह देना और संसार को सदैव भ्रम में डाले रहना।

सागर—दंड उतना ही होना चाहिये कि दंडित चेत जाय, उसे त्रास हो जाय। अगर वह अपाहिज हो गया तो—

बादल—हाँ यह भी कोई नीति है आततायी नित्य अपना सिर उठाना चाहे और शास्ता उसकी चिंता में नित्य शस्त्र लिए खड़ा रहे, अपने राज्य की कोई उन्नति न करने पावे।

सागर—एक छोटे से मैनाक की इतने बड़े विषय में क्या गिनती।

बादल—जो अम्ल के एक बूँद की मनों दूध में तू इस क्षात्र धर्म की सूक्ष्मता को क्या समझे।

सागर—तूने हाथ में नर कङ्काल का एक टुकड़ा ले लिया कि बड़ा वृहस्पति बन बैठा।

बादल—आः सुरराज के शस्त्र की यह अवमानना। तू तो साठ हजार मर्त्यों का द्रव है।

सागर—तो क्या यह बात भी सत्य नहीं कि बज्र की रचना के लिए एक तपस्वी की हत्या कराई गई ?

बादल—हाँ, कुलिश ने अपनी उत्पत्ति से दधीचि की तपस्या सफल कर दी थी।

सागर—तुम लोग जान ले लेना कोई बात ही नहीं समझते।

बादल—हम हत्या, बध, आलभन, बलिदान, हिंसा नाश आदि का विभेद जानते हैं। इन गहन विषयों को तू क्या समझे?

सागर—मैं हत्यारों से बात नहीं करना चाहता।

बादल—और मैं उन दुर्बल हृदय वालों से बात नहीं करना चाहता जो कायरता और कापुरुषता को धर्मभीरुता मानते हैं।

प्रश्न

१—सागर और मेघ की बात चीत का सारांश लिखो।

२—राजा सागर के साठ हज़ार पुत्र कैसे भस्म हुए थे?

३—सागर और मेघ की बात चीत में तुम्हें किसकी युक्तियाँ अधिक पसन्द हैं और क्यों?

४—अ—इस छोटे से मैनाक के इतने बड़े विश्व में क्या गिनती?

आ—यदि तू मेरे लिये ऊपर है तो मैं भी तेरे लिये ऊपर हूँ। क्योंकि दोनों का आकाश एक ही है। उपर्युक्त की पुष्टि करो।

५—प्रतिहिंसा, प्रतिरक्षण, आलभन, बलिदान के अर्थ करो।

२०—गृह-प्रबन्ध में मितव्ययता

[ले०—श्रीमती प्रभावती शुक्ल]

[आप हिन्दी की अच्छी लेखिका हैं। आप बराबर पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखा करती हैं। इन लेखों में नारी-समस्याओं का अंकन बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता है। प्रस्तुत लेख में आपने बड़ी गंभीर दृष्टि से विचार किया है जो अनुकरणीय और मननशील है।]

स्त्री का सब से बड़ा सौंदर्य यह है कि वह परिवार की दीन से दीन दशा का भी बाहरवालों को पता न चलने दे। हमारी पूर्वज आर्य्य महिलायें इसी विभूति के कारण अन्नपूर्णा कही जाती थीं। यही कारण था कि उस समय का भारत आज-जैसा मूर्तिमान दुर्भिक्ष का साम्राज्य न था। उस समय बहुत थोड़ी आय वाले नागरिक के यहाँ भी समृद्धि पाई जाती थी। आज हमें अतिथि का दर्शन तो क्या, नाम भी भला नहीं लगता! किसी समय अतिथि को भगवान् का पद दिया जाता था! इस बात से भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन युग समृद्धि-युग था।

एक धनी और एक निर्धन की सत्ता सदा से चली आई है। सभी धनी और सभी निर्धन नहीं होते! उनका सम्मिश्रण प्रत्येक जाति, प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक परिवार में पाया जाता है; यह प्रकृति का नियम है। यदि एक बार सारे संसार का धन एकत्र करके उसे बराबर-बराबर भागों में संसार के प्रत्येक प्राणी को बाँट दिया जाय तो एक वर्ष के भीतर ही बहुत लोग तो अपनी अयोग्यता और विलासपूर्ण प्रकृति के कारण सब-कुछ खो बैठेंगे और बहुत से धनाढ्य हो जायँगे। धनी लोग मरते समय अपने

सभी पुत्रों को बराबर बराबर भागों में अतुल सम्पत्ति बाँट जाते हैं। परन्तु कोई अपने अवगुणों के कारण दिवालिया बन बैठता है और कोई धन-कुबेर ! इससे यह स्पष्ट हो गया है कि सधनता और निर्धनता का चक्र चल रहा है, अतएव स्त्रियों को अपने आपको मितव्ययी बनाना होगा। भगवान् (यदि भाग्य कोई वस्तु है) जिस दशा में भी रखे उन्हें उसी दशा में सन्तुष्ट रहना होगा। इसी दशा में स्त्री को मितव्ययी बनना सर्व-प्रथम अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये, अन्यथा जीवन दुखपूर्ण बन जाने की आशंका रहती है।

प्रत्येक माता को चाहिये कि वह कन्या को विवाह करने के पूर्व उसे मितव्ययी बना दे। यदि वह ऐसा नहीं करती तो समझ लेना चाहिये कि उसने कन्या के साथ उपकार करने के स्थान में अपकार किया है। मैं तो यह कहती हूँ कि केवल विवाह को अपनी कन्या के प्रति एक मात्र कर्त्तव्य समझने वाली माताए कन्या शब्द की व्याख्या ही नहीं जानती। जब कोई मनुष्य चार दिन के लिए भी परदेश जाता है तब वहाँ के लिये सामान बाँध लेता है! पहाड़ों पर जाने वाला कम्बल और रुई के बिस्तरे तथा गर्म कपड़े और किसी विभिन्न जल-वायु वाले स्थान पर जाने वाला पहले से जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली व्याधियों की आशंका से अपने साथ औषधियाँ ले जाया करते हैं। यह उसका कर्त्तव्य है, और कब, जब वह केवल एक या दो सप्ताह के लिये जाता है। फिर जीवन भर के लिये पति-गृह में निवास करने के लिये जाने वाली कन्या को वहाँ भेजने से पूर्व क्यों न सब ऊँच-नीच समझने के योग्य बनाया जाय ? यदि नहीं बनाया जाता, तो यह उस कन्या के साथ भयङ्कर अन्याय है। वह माताएँ, जो लड़की के हाथ पीले कर देने पर ही अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री

समझ लेती हैं वह कर्तव्यहीन ही नहीं, वरन् कन्या की सबसे बड़ी शत्रु हैं। मैं तो यह भी कहती हूँ कि जब तक उस कन्या में गार्हस्थ्य जीवन निर्वाह करने की योग्यता न आजाय, उसका विवाह ही न किया जाय।

शील, दया, पति के संबन्धियों की आज्ञा पालन करना और अन्य गुण तो ऐसी बातें हैं, जिनको कि मूर्ख से मूर्ख माता भी अपनी कन्या को सिखाने की चेष्टा करती है। अतएव मैं उन बातों की विशेष चर्चा ही नहीं करती। अपनी कन्या को उक्त गुण न सिखाने वाली माता को तो मैं माता ही नहीं कहती।

इन गुणों के अतिरिक्त सब से महत्व की बात मितव्यता है और मैं उसी की चर्चा करूँगी।

सुनते हैं कि किसी समय एक मनुष्य कमाता और दस खाते थे। आज कल यह बात स्वप्न सी हो गई है। आज कल एक मनुष्य कमाता और अधिक से अधिक अपना, स्त्री का और एक आध बच्चे का पेट पालन कर पाता है और वह भी बड़ी कठिनता से। कहीं-कहीं तो यह देखा जाता है कि एक मनुष्य कमाता है और कठिनता से अपना पेट भर पाता है। आखिर यह आकाश-पाताल का अन्तर क्यों? अन्तर यही है, हमारी बहिनों में मितव्यता का अभाव है।

बहुधा माताएँ अपनी कन्याओं को व्यावहारिक शिक्षा-प्रदान कर उसके सामने गार्हस्थ्य-शास्त्र की पुस्तकें पटक देने से ही सन्तुष्ट हो जाती हैं; यह भी एक न्यूनता है। बाल्यकाल इतना उच्छृङ्खल होता है कि बहुत कम कन्याएँ ऐसी ठोस पुस्तकों का जिनकी विवाह से पूर्व ठीक-ठीक उपयोगिता समझ लेना भी कठिन है, अध्ययन करती हैं। शेष केवल माँ को धोखा देने के लिए उनके सामने पुस्तक खोलकर बैठ जाती हैं, पढ़ती लिखती कुछ भी नहीं। मैं अपनी ही बात कहती हूँ। जिस

समय मैं विवाह हो जाने पर पति-गृह में आई, मुझे मितव्यता का ज्ञान भी न था। माता जी बाल्यकाल में ही मर चुकी थीं। पिता जी ने मेरे हितार्थ गार्हस्थ्य-शास्त्र पर कुछ पुस्तकें खरीद कर मुझे दे दीं और मैंने उन्हें समझने की चेष्टा तक नहीं की। पुस्तक खोलकर बैठ अवश्य जाती थी। फलतः वे सारे उपदेश 'पुस्तकस्था तुल्या विद्या' के अनुसार पुस्तक में ही रह गये। और मैं पति-गृह में अपनी बाल्यकाल की वही मुक्तहस्तता लेकर आयी परिमाण यह हुआ कि मुझे लगभग पाँच वर्ष तक बड़ी भ ंकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। पतिदेव केवल सौ रुपया मासिक वेतन पाते थे और वे मेरे पति जी, मेरी छोटी ननद, और बूढ़ी चक्षु-हीन सासुजी के लिये भी पर्याप्त न होते थे। हर महीने रुपया पैसे का रोना ही बना रहता था। धीरे धीरे समय के थपेड़ों ने स्वयं मितव्यता सिखाई और तब कहीं जाकर वह नित्य का रोना मिटा। अतएव प्रत्येक माता का यह भी कर्तव्य होना चाहिये कि वह कन्या के सामने स्वयं मितव्ययता करके ऐसा करने का उदाहरण उपस्थित करें और नित्य की व्यावहारिक बातों से उसे मितब्ययी होना सिखावें।

मितव्ययता नौकरों का पेट काटकर नहीं होती। किसी अनुचित व्यय में नौ के स्थान पर दस और उचित व्यय में दस के स्थान पर पाँच व्यय करना भी मितव्ययता के ज्ञान की कमी है, अतएव स्त्री का क ंव्य है कि व्यय करने के पूर्व उचित व्यय और अनुचित व्यय का विचार रखे। अनुचित व्यय में अधिक और उचित में कम व्यय करनेवाली स्त्रियाँ अपने को मितव्ययी समझती हैं। परन्तु वास्तव में उतनी ही फ़िजूल-खर्ची होती है। उचित और अनुचित व्यय की पहिचान करना कठिन नहीं है। उचित व्यय की व्याख्या है—वह व्यय जिसके बिना जीवन निर्वाह, मान-रक्षा और गृहस्थ पालन ही न हो सके अर्थात प्रधान

व्यय, और अनुचित व्यय जैसे बाहरी टीम-टाम, नौकरों का वेतन चाट, मिठाई और अन्य सुस्वादु पदार्थों का व्यय आदि (गौण व्यय)। इसी के अनुसार प्रत्येक स्त्री अपने ध्येय को परिमित और सुविभक्त कर सकती है। मितव्यय सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ना भी अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उनसे सैकड़ों नई बातों के विषय में ज्ञान होता है, परन्तु उपर्युक्त बात का स्मरण अवश्य रहे।

केवल पुस्तकें पढ़ लेने से ही मितव्ययी होना नहीं आ जाता; यह गुण पुस्तकों के उपदेशों को व्यवहार में लाने और उनका अभ्यास करने से आता है।

प्रश्न

१—स्त्रियों को मितव्ययी क्यों होना चाहिए? और इससे क्या क्या लाभ हैं? स्पष्ट लिखो।

२—गृह-प्रबन्ध और मितव्ययता से क्या सम्बन्ध है?

३—स्त्री का सब से बड़ा सौन्दर्य क्या है?

४—मितव्ययता पर एक निबन्ध लिखो।

५—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ बताओ और उनका वाक्यों में प्रयोग करो:—

विभूति; एक मात्र, चक्षुहीन, सुस्वादु।

६—इस पाठ में से छाँट कर दो संज्ञा शब्दों का पदान्वय करो।

२१—मध्य योरप का प्राकृतिक सौन्दर्य

[ले०—श्री रामनाथ 'सुमन']

[ये हिन्दी-साहित्य के सुयोग्य लेखक हैं बनारस के रहनेवाले हैं। इनके लेख समय-समय पर हिन्दी की पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होते रहते हैं। इन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त अङ्गरेज़ी साहित्य का भी अध्ययन

किया है। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें विपंची और भाई के पत्र अधिक प्रसिद्ध हैं। ये आजकल प्रयाग में रह कर पुस्तकें लिखते हैं। इन्होंने अपने इस लेख में स्वीटज़रलैंड के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है। लेख की भाषा प्रौढ़ और शुद्ध साहित्यक है।]

एशिया, योरप और अमेरिका के मध्य भाग में कुछ ऐसे सुन्दर स्थान हैं, जहाँ विकल-पीड़ित और क्षुब्ध मनुष्य को ज़रा सी शान्ति मिलती है। हिमालय की ऊँची चोटियों, तिब्बत और मानसरोवर के समीपस्थ मैदानों, काश्मीर के जङ्गलों, ईरान के फल-फूल से लदे हुए प्राकृतिक उद्यानों को एक बार देख कर जीवन से निराश व्यक्ति में भी अधिक से अधिक समय तक जीने की इच्छा जागृत हो जाती है। इसी प्रकार मध्य अमेरिका की पर्वतीय अधित्यकाएँ, प्रकृत संगीत-पूर्ण झरने और झीलें हमें जीवन के मधुर स्वाद का अनुभव करने को विवश कर देती हैं। मध्य योरप का प्राकृतिक सौन्दर्य तो अनूठा ही है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों के साथ ही प्राचीन वैभव-पूर्ण रोमन साम्राज्य की कलाएँ, उन्नत विज्ञान के चमत्कार-पूर्ण करिश्मे और जीवन की परिष्कृत प्रणालियाँ भी स्थान-स्थान पर दिखाई देती हैं। मध्य एशिया के कतिपय दुरूह और अगम भागों को छोड़कर मध्य योरप जैसा प्राकृतिक सौन्दर्य संसार में और कहीं देखने को नहीं मिल सकता।

मध्य योरप के यात्री को प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त और भी अनेक चीज़ें देखने को मिलती हैं। इटली की अनेक सुन्दर इमारतें देखकर मनुष्य आश्चर्य-मय और विमुग्ध हो जाता है। योरप के मध्य-भाग में इटली, आल्पस की पर्वतमालाएँ और स्वीटज़रलैंड के मनोरमा प्राकृतिक दृश्य देखने ही योग्य हैं। इन देशों में प्रकृति और मनुष्य दोनों की कारीगरी देखने को मिलती है। इटली में 'रोम' और 'मिलन' ख़ास तौर से देखने योग्य

नगर है। मिलन का गिर्जाघर संसार की अद्भुत इमारतों में से एक है। इसकी जोड़ की दूसरी इमारत दुनियाँ में शायद ही मिलेगी। यह समस्त गिर्जाघर बढ़िया संगमरमर का बना हुआ है। इसमें ६८ चोटियाँ हैं और मूर्तियों की संख्या तो दो हज़ार से भी अधिक होगी। उषा काल में जब इन चोटियों पर बाल सूर्य की कुमारी किरणें पड़ती हैं, तो इस विचित्र गिर्जाघर की शोभा देखने ही योग्य होती है। चोटियों के सिर पर कतार से खड़ी हुई मूर्तियां प्रकाश में मानो नाच उठती हैं। वेरोना का गिर्जा भी देखने ही योग्य है और बारहवीं शताब्दी की इटैलियन भवन - निर्माण-कला का एक अच्छा नमूना है।

इटली के चाये-चाय में मूर्ति-कला, संगीत और चित्रकला के भाव प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं। इस भूमि ने न जाने कितने महान पुरुषों को जन्म और प्राण दिया है। रोमियो जूलियट जैसे प्रेमियों का घर वेरोना इटली में ही है, फ्लोरेंस के चरणों को धोनेवाली आर्नो के तट के सुंदर दृश्य इटली में ही हैं जहां दान्ते ने ब्रिटिश को मुग्ध होकर देखा था। वेनिस के ग्रैंड कनाल का वह सौन्दर्य इटली में ही है, जहां छोटी और सौन्दर्य के नशे में ऊपर नीचे करनेवाली तरणियों (गंडोलाओं) में बैठकर ब्राउनिंग और बायरन जैसे कवियों के हृदय में अभिनव भाव जागृत हुए थे। माइकेल असीसीके सेंट फ्रांसिस और सेन्टकैयेरीन की जन्मभूमि इटली कला का एक ऐसा देश है, जिसे उन्नत विद्वान की कलाएँ अभी तक नष्ट नहीं कर सकी हैं।

राइन-प्रताप को देखकर एक अनिर्वचनीय आनंद, एक आंदोलनकारी पुलक का अनुभव प्रत्येक प्राणी को हुए बिना नहीं रह सकता है। 'राइन-प्रपात' को देखकर हमारे एक मित्र ने स्वीटजरलैंड की राजधानी बर्न से लिखा था:—

आल्प्स की पर्वत-श्रेणियों में स्थान-स्थान पर हर-हर शब्द से गिरते हुए प्रपातों, झरनों और पर्वतों, और झरनों और पर्वतखंड को काट कर बहनेवाली नदियों के दृश्य इतने मनोरम हैं कि उन्हें उच्च पर्वत-खंड से हर-हर कर आनेवाली पानी की धारा नीचे पहुँचते ही उज्ज्वल और प्रकाशमान फेन के रूप में बदल लेती है और इस फेन पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तब असंख्य इन्द्र-धनुषों का उदय होता है। पानी के धक्के से वायु-मंडल में दूर तक फेन के बादल से छा जाते हैं, जो शिशिर के प्रकाशमान दिनों में स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

स्वीज़रलैंड के सौंदर्य का वर्णन क्या किया जाय, वह तो योरप का स्वर्ग ही है। इसका आकर्षण, इसकी प्राकृतिक शोभा इसकी मनोहर नदियां और झील हर साल लाखों यात्रियों के हृदय में यह भाव जागृत करती है, कि मनुष्य कितना ही उन्नत हो जाय पर प्रकृति के सामने वह बच्चा है। इस देश के प्राकृतिक सौंदर्य में एक विशेषता यह भी है कि बार बार देखने से देखने की इच्छा होती है, कभी मन उससे थकता नहीं। यह वह सौंदर्य है जो 'नित-नित नूतन होय' वाली विद्यापति की उक्ति को सार्थक करता है। इस देश को लोग योरप की क्रीड़ा-भूमि कहते हैं। अब तो रेलों ने इसको तराशकर यात्रियों के लिये सुगम बना दिया है, किन्तु एक समय ऐसा था कि इसका सौंदर्य और भी आकर्षक था। इस समय योरपीय विज्ञान ने उसे सशब्द सौंदर्य कर दिया है, पर पहले वह मूक सौंदर्य था। बहुतों ने प्राकृतिक सौंदर्य के साथ इस प्रकार व्यापार करने की बहुत निंदा की है।

रस्किन ने तो एक जगह लिखा है कि 'इन सुन्दर पर्वतीय चोटियों पर बने हुए होटलों और विश्रामगारों में जब बिजली की बत्तियां जलती होती हैं, तब ऐसा मालूम होता है मानो प्रकृति

का कोढ़ हो गया है। इस प्रकार, यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य बनाने को होड़ में यद्यपि प्राकृति की शांति कहीं-कहीं क्षुब्द हो उठी है, फ़िर भी आल्पस की पर्वत-माला में अनेक ऐसे दृश्य हैं जहाँ विज्ञान की दाल नहीं गल सकी है, जो मनुष्य की दूषित व्यापार वासना से कलुषित नहीं हैं, और जिन्हें देख कर ईश्वर की महानता का भाव हृदय में उदय होता है।

झीलों और झरनों का तो स्वीज़रलैंड में अतिशय आधिक्य है। मज़ा तो यह है कि इनमें से प्रत्येक अपने रंग-रूप और सौंदय में दूसरे से भिन्न हैं। इस प्रकार के झरनों में मेरिङ्गन के समीप रिशनवेक प्रपात का दृश्य देखने योग्य है। इसी के पास 'गोजआव आवर' नामक पतली घाटी की प्राकृतिक सुषमा पर आँखें रुक जाती हैं और थोड़ी देर के लिये मनुष्य सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। पानी की हरहराती हुई धारा जब चट्टानों से टकराकर भयानक रूप धारण कर ऊपर उठती है, तब मालूम होता है, मानों बूँदों के समष्टि जगत् में क्रान्ति नाच रही है। लाडरब्रु नेय घाटी के तमेलवेक झरने को देखकर अँगरेज़ी का प्रसिद्ध कवि 'लाग फेलो' मुग्ध हो गया था। उसकी कविता आज भी गद्गद् हृदय से इसके सौंदर्य का संदेश हज़ारों विद्यार्थियों तक पहुँचाती है।

दूर-दूर तक फैले हुए नर्गिस के खेतों में जब कभी हवा भूल कर चली जाती है, तब ऐसा मालूम होता है कि वह अपने नशे से पड़ोसी गावों को बेहोश किये बिना न रहेगी। रोम की घाटी ने अपने सौंदर्य के नशे से न जाने कितने जर्मन-कवियों को उस संगीत में ओत-प्रोत होने को बाध्य किया था जिसे पढ़कर आज भी हम सुन्दरतम जगत की कल्पना करने लगते हैं। केवल जैनेवा-झील का दृश्य ही यात्री का हृदय हर लेने के लिये काफ़ी है। हज़ारों प्रकार की घाटियाँ, सैकड़ों प्रकार के सोते और झरने

प्रचीन रोमन कालीन क़िले और भयानक चोटियों के एक से एक बढ़कर दृश्य को देखकर ही एक लेखक ने लिखा है—"जहाँ भी यात्री जाता है, वहाँका दृश्य उसे आश्चर्य-विमुग्ध कर देता है। सम्पूर्ण समय आँखों को दृश्य और सुषमाराशि लुभाती रहती है। यह कहना असम्भव है कि कौन कहाँ का सर्वोत्तम दृश्य है। प्रत्येक दृश्य हृदय में नई भावनाएँ जागृत करता है; सबों में भिन्नता है। सभी प्रकार के मनुष्यों के योग्य कुछ न कुछ यहाँ मौजूद है।

मध्य योरप और विशेषतः स्वीज़रलैंड एवं दक्षिण जर्मनी का प्राकृतिक सौंदर्य देखने ही योग्य है। लेखनी उस सौंदर्य का चित्र कभी नहीं खींच सकी जो योरप के प्राकृतिक सौंदर्य को जानते हैं

प्रश्न

१—प्राकृतिक सौंदर्य से क्या मतलब समझते हो, किसी स्थान के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन अपने भाषा में करो।

२—प्राकृतिक दृश्यों को देखकर जीवन से निराश मनुष्यों के हृदय में भी जीने की इच्छा क्यों जागृत हो जाती है?

३—स्वीज़रलैंड कहाँ है, वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का सूक्ष्म रूप में वर्णन करो।

४—राइन प्रपात को देखकर लेखक के एक मित्र ने क्या लिखा था?

५—प्रमाणित करो कि स्वीज़रलैंड योरप का स्वर्ग है।

६—स्वीज़रलैंड के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन एक पत्र के रूप में करो।

७—क्या हैं और कैसे बने हैं—
पंडित, पर्वतीय, सौंदर्य, प्राकृतिक

८—अर्थ बताकर अपने वाक्यों में प्रयुक्त करो—
जागृत हो जाती है, सौन्दर्य तो अनूठा है, नित-नित नूतन होय, क्रान्ति नाच रही है।

२२—जीवन-संग्राम और छोटे प्राणी

[ले०—श्री लज्जाशङ्कर झा, एम० ए०, एल, टी०]

[ये हिन्दी के सुयोग्य लेखक हैं। इसके लेख बड़े सुन्दर और भावपूर्ण होते हैं। इन्होंने कई सुन्दर पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें शिक्षण पद्धति अधिक प्रसिद्ध है। थे आजकल काशी विश्वविद्यालय के ट्रेनिङ्ग कालेज में प्रिंसिपल हैं। इन्होंने अपने इस लेख में छोटे जीवों के जीवन-संग्राम पर प्रकाश डाला है। लेख सुन्दर और भाव पूर्ण है। इसकी भाषा भी अत्यन्त प्रौढ़ और विशुद्ध है।]

जीवन संग्राम की दृष्टि से छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों के जीवन और उनकी शरीर-रचना को देखने से हमें केवल आनन्द ही नहीं होता, वरन् उसमें ईश्वर की अद्भुत लीला को देखकर उसके प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा भी उत्पन्न होती है। पहली बात जो हमें मालूम होती है, यह है कि प्राणियों की शरीर-रचना उनके निर्दिष्ट जीवन के अनुकूल ही की गई है। जिस प्राणी में कम क्षमता है, उसका जीवन इस संसार में कदापि सुखमय नहीं हो सकता। क्षमता कई प्रकार की होती है, अर्थात् मानसिक बल, शारीरिकबल, परस्पर सहायता देने की शक्ति, जल-वायु-संबन्धी परिवर्तन के सहने की शक्ति, आघात सहने की शक्ति अर्थात् सजीवता और उपयोगिता।

कीड़ों मकोड़ों का अवलोकन करने से हमें मालूम होता है कि इनमें भोजन प्राप्त करने और आत्म-रक्षा करने के विचित्र ढङ्ग हैं। खटमल का शरीर गोल और चपटा इसलिए होता है कि काम पड़ने पर वह निवाड़ और पट्टियों के बीच में बिना कठनाई

के छिप सके। मनुष्य ज्यों ही खाट पर लेटा कि ये अपने संकीर्ण कन्दरों से निकलकर उसका रक्त चूसने लगे; पर ज्यों ही वह बैठ कर उनकी खोज करने लगा त्यों ही वे अपने-अपने स्थानों में जा छिपे। चपटा शरीर होने के कारण वे मनुष्य से तो इस प्रकार छिप जाते हैं और शरीर होने से दुर्गंध निकलने के कारण वे हिंसक प्राणियों से भी बच जाते हैं।

संकीर्ण स्थानों में छिपनेवाले कीड़ों के शरीर खटमल के ही समान चपटे रहते हैं। एक प्रकार के कीड़ों के शरीर से ऐसा खराब तेल निकलता है कि उसके लग जाने से फफोड़े पड़ जाते हैं। उनके तेल के भय से उनको खाने की इच्छा कोई भी हिंसकी प्राणी नहीं करता। एक दूसरे वर्ग का बीटिल या गुबरैल होता है जो शत्रु के पास आते ही बन्दूक सी छोड़ता है, जिसका धुआँ शत्रु की आँखों में घुस कर उसे विकल और बेकाम कर देता है। इतने में वह बीटिल पलायमान हो जाता है।

कोई-कोई इल्लियाँ अपनी ही विष्ठा से अपने शरीर को पोत कर शत्रुओं को भड़काती हैं। एक इल्ली के शरीर पर सेंवई के समान बाल होते हैं जिन्हें वह भय के समय खड़ा कर अपनी रक्षा करती है। उसके बाल ज़हरीले और खड़े होने पर पैने होते हैं। चटकीले रंगवाले कीड़े बहुत दूर से दिखाई देते हैं और बहुधा निस्सहाय होते हैं; इसलिए हिंसक प्राणी यदि उन पर आक्रमण करें तो उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं; परन्तु उनका रंग ही यह घोषित करता है कि उनके शरीर में कड़वापन, नीरसता आदि अवगुण भरे हुए हैं। चटकीले रंग को देखकर हिंसक जीव समझ जाते हैं कि यह प्राणी हमारे खाने के योग्य नहीं है। रंग-बिरङ्गी तितलियाँ जो बगीचे, खेतों आदि में परियों के समान नाचती और हमें आनन्द देती हैं, इसी कारण दुष्ट जीवों से बची रहती हैं।

अनेक जीव किसी न किसी प्रकार हिंसक जीवों से अपनी रक्षा करने के समर्थ हो जाते हैं, पर इस पाठ में केवल उन कीड़ों के वर्णन करने का प्रयत्न किया जायगा, जो स्वांग रचकर अथवा अभिनय करके शत्रुओं की आँख में धूल झोंकते और अपना काम चलाते हैं।

अनेक बालकों के देखने में आया होगा कि कम्बल नाम का कीड़ा, किसी का हाथ लगते ही अपने शरीर को गुड़मुड़ी कर गोलरूप बन जाता है। इसी प्रकार जिजाई नामक लाल कीड़ा, जो बरसात के आरम्भ में दिखाई देता है, भय का संकेत पाते ही गुड़मुड़ी हो निश्चल हो जाता है। इसका अभिप्राय क्या है। एक तो यह कि उस रूप में शरीर के कोमल अंग नीचे होकर हानि से बचते हैं, और दूसरे यह कि उसे निश्चल देख शत्रु यह समझ कर कि वह मर गया है उसका पीछा छोड़ देता है।

एक दालनुमा कीड़ा होता है। उसकी चालाकी और भी तारीफ़ करने के लायक़ है। जब वह किसी पत्ते या डाल पर बैठा हो उस समय कोई उँगली भर उठा दे, बस वह तुरन्त सिकुड़-कर और दाल का रूप धारण करके इस साफ़ाई से नीचे गिर जाता है, मानों कोई दाना टपक पड़ा हो। धरती पर गिरते ही वह घास-पात का आश्रय ले इस धूर्तता से छिप जाता है कि उसका पता लगाना प्रायः असंभव ही हो जाता है। ये तीनों प्रकार के कीड़े मक्कारी नहीं करते तो क्या करते हैं!

ऋतु के अनुसार, अपने रंग बदल कर, घास-तृण आदि में छिप जानेवाले कीड़ों को बहुरूपिये कीड़े कह सकते हैं। गिरगिट में शक्ति होती है, कि जिस स्थान में जा बैठता है उस स्थान के रंग की झलक अपने शरीर में ले आता है। इतनी जल्दी अपने रंग में परिवर्तन करने की शक्ति टिड्डे में यद्यपि नहीं है। परन्तु वह भी ऋतु के अनुसार भेष बदल लेता है।

बरसात में जब चारों ओर हरियाली रहती है, तब उसका रंग भी हरा रहता है। कार्तिक मास में वह पकी घास का रंग लेने लगता है, और जब चैत्र, वैशाख में हरियाली तथा घास बिलकुल नहीं रहती तब वह बहुरूपिया मटिया रंग का हो जाता है। इस प्रकार रङ्ग बदलने से उसको यह फ़ायदा होता है कि वह अपने को बिना प्रयास छिपा सकता है और अपनी जाति को शत्रुओं से बचा सकता है। उसके पङ्ख भी इस प्रकार के बने रहते हैं, मानों दो हरे कोमल डाल से हाल ही में निकले हों और अभी तक कड़े होकर फैले न हों। जब वह वर्षा ऋतु में डाल पर बैठा रहता है उस समय उसे पहचान लेना टेढ़ा काम होता है। दूर से देखने में तो धोखा होता ही है।

एक समय में हरे रङ्ग की एक इल्ली नींबू के पेड़ के एक पत्ते पर इस खूबी से बैठी हुई नज़र आई कि एक गज़ की दूरी से ऐसा मालूम होता था कि एक छोटा-सा नीबू डाल से निकल कर पत्ते से सटा हुआ है। हम कई बार उस पेड़ के पास से निकले और प्रत्येक समय हमें यही भ्रम हुआ। उस पेड़ के पत्तों को कोई प्राणी आकर खा जाया करता था, इसलिये थोड़ी देर के पीछे व उस पेड़ का बारीकी से तालाश की गई, तब मालूम हुआ कि वह नींबू नहीं बल्कि इल्ली है, जो इस प्रकार एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर बैठ उन्हें चाट जाती है। जब उसे पकड़ कर हटाने की चेष्टा की तब वह पत्ते से ऐसी चिपक गई मानों वह उसी का एक भाग हो।

इल्ली को अभिनय में इतना प्रवीण देख हमें बहुत विस्मय हुआ, पर उसके साथ यह विचार भी आया कि यदि वह अभिनय में इतनी कुशल न होती, तो इतने दिनों तक सब लोगों की आँखों में धूल झोंक कर अपना पेट क्यों भरती? तलाश करने पर ज्ञात हुआ कि वह नारंगी के पेड़ पर बैठने वाली तितली जाति की

एक इल्ली थी। नारंगी चूँकि नींबू की ही जाति का पेड़ है इसी कारण वह वहाँ पहुँच गई।

एक दूसरे दिन हमें इससे भी बढ़कर और एक विस्मयजनक दृश्य देखने को मिला। एक पेड़ की एक डाल में कलम की हुई और कुछ सुखी हुई एक टहनी-सी हमें दिखाई दी? उसे देख हमारे मन में यह प्रश्न उठा कि वह टहनी क्यों सूख गई? इसका अनुसंधान करने के लिये ज्यों ही हमने उस टहनी को हिलाना चाहा त्यों ही एक कीड़ा पंख फैला उस पर से उड़ गया। जब तक वह कीड़ा पेड़ पर बैठा रहा, तब तक हमें वही प्रतीत होता रहा कि वह टहनी है। उसका रङ्ग बिलकुल उस पेड़ की डाली से मेल खाता था और उसके बैठने का ढ़ङ्ग भी ऐसा था कि वह सूखी कलम की हुई कटी टहनी के डंठल के समान ही दीखता था। वैसा प्राणी हमें अभी तक देखने को नहीं मिला। धन्य है, उसके रूप तथा अभिनय को जो देखने वालों को इतने भ्रम में डाल देते हैं।

इसी प्रकार कई अन्तम प्राणियों के रङ्ग उनके भक्ष्य के रङ्गो से मिल जाते हैं और जब वे उन पर जा बैठते है, तब सौ में से ६० मनुष्य उन्हें पहचानने में असमर्थ रहते हैं। कई तितलियाँ और फतिंगे अदृश्य होने में बड़े निपुण होते हैं। एक प्रकार की तितली की कमर बाल के समान पतली होती है, और वह बहुधा कटीली झाड़ियों पर बैठती है। फिर बैठती भी इस चतुराई से है कि धड़ डाल में लय होकर पंख पत्ते नुमा हो जाते हैं। भूरे रङ्ग के कई फतिंगे पेड़ों की पींड़ पर अथवा काठ की दरारों और उसके गड्ढों में निश्चल बैठकर उनके रङ्ग में छिप जाते है। पेड़ों की खुरदरी धरती पर वृहद्दर्शकताल (मेग्नीफाइङ्ग ग्लास) लगाने से कई घुन ऐसे मिलेंगे जो छाल के रङ्ग से अपना रङ्ग मिला कर अदृश्य से होकर उसे खाते रहते हैं।

एक नीति की पुस्तक में एक गधे की कहानी लिखी है। उसे कहीं व्याघ्र का चमड़ा मिल गया था और वह उसे ओढ़ कर बन के पशुओं को डराया करता था। इसी तरह कार्तिक में एक प्रकार की मक्खी आती है, जिसका स्वरूप मधुमक्षिका से इतना मिलता-जुलता है कि कोई भी उसे पकड़ने या छेड़ने का साहस नहीं करता। न उसमें डंक होता है, और न ज़हर; परन्तु अपने आच्छादन की सहायता से वह हिंसक जीवों को डराकर दूर रखती है।

इस देश में शिक्षित तथा अशिक्षित मनुष्यों का लक्ष्य ऐसे छोटे जीवों पर नहीं जाता और इसलिये अभी तक इस मक्खी का कोई विशेष नाम नहीं पड़ा।

कपास के फूलों पर काले रङ्ग का एक बीटिल कीड़ा आया करता है, जो देखने से व्याघ्र बीटिल कीड़े के समान भयंकर और तेज़ तर्रार मालूम होता है; परन्तु यथार्थ में वह आत्म-रक्षा के अयोग्य होता है। व्याघ्र-बीटिल के समान शिकार करने की बात तो दूर रही, उसे केवल अपने रूप के कारण ही सुरक्षा मिल जाती है। कोई-कोई उसे तेलिन-बीटिल कहते हैं, परन्तु वह तेलिन कहाँ से हो गई सो समझ में नहीं आता। इसी प्रकार एक निस्सहाय मक्खी और होती है, जो बर्रे का रूप धारण कर अपनी आत्म-रक्षा कर लेती है।

अफ्रीका महाद्वीप के घने जङ्गलों में जहाँ ६-१० फुट ऊँची घास उगती है, और कहीं-कहीं इस देश में भी एक घासनुमा कीड़ा मिलता है, जिसका रूप बिलकुल घास के समान होता है। यदि वह किसी मनुष्य के हाथ में रख दिया जाय तो वह शायद ही उसे पहचान सके कि वह कोई प्राणी है। दूसरे कीड़ों के समान उसके भी छः पाँव होते हैं, पर वे इतने छोटे और टेढ़े-सीधे

निकले रहते हैं कि देखने वाले को यही अनुमान होता है कि घास की पींड़ में से छोटी शाखाएँ निकली हैं। उसका सिर घास की गाँठों के समान छोटा होता है, जिसमें से पतले महीन पत्तों के समान छोटी मूँछें निकली रहती हैं। हाथ में लेकर इस जीव को दबाने से वह धूर्त पाँव हिलाकर भी अपना परिचय नहीं देता। दिन के समय वह अपने पैरों से घास की डंडी को दबाये हुये और शरीर को डंडी से चिपकाये हुये निश्चल पड़ा रहता है। रात्रि होते ही घास का स्वांग छोड़कर यह मक्कार अपने भोजन की खोज में निकलता है। जिस तरह मनुष्य पेड़ की छाया में विश्राम कर उसी पर पत्थर चलाता है, उसी तरह यदि यह नीच जीव भी अपने आश्रयदाता के ऊपर ही पहले मुँह चलाता है, तो इसमें विचित्रता ही क्या है! घासनुमा कीड़े की शरीर-रचना में एक और विशेषता यह है कि जैसे-जैसे ऋतु के अनुसार घास की रंगत बदलती जाती है, वैसे ही वैसे वह भी अपनी रङ्गत बदलता जाता है।

पत्तनुमा कीड़े कुछ कम विस्मयजनक प्राणी नहीं हैं। इनका शरीर चपटा और चौड़ा होता है, और इनके ऊपर पंखों में पत्तों के समान नसें होती हैं। कीड़ों के द्वारा खाए हुए पत्ती के समान इनकी टाँगे होती हैं। ये कीड़े बहुरूपियापन करके पत्तों की क्या ही अच्छी नक़ल कर दिखाते हैं!

अभी तक जिन प्राणियों का वर्णन किया गया है वे ग़रीब दुखिया हैं, उन्हें रात-दिन अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता रहती है। बलिदान देते समय बकरा ही चढ़ाया जाता है, सिंह नहीं; देवता भी दुर्बल के ही घातक होते हैं, उसी का बलिदान लेते हैं! जीवन-संग्राम का अवलोकन करने से यह बात अक्षरशः सत्य मिलती है। कमज़ोर और सीधे जीवों को इस दुनिया में ख़ैरियत नहीं, उनको माताएं कब्र तक दुआ माँगती बेचारों का

नाश करने के लिये कोई न कोई तैयार ही रहता है। विधाता ने अनेक उपाय रच कर जीवों को बचाने का मार्ग बतला दिया है; परन्तु फिर भी कभी न कभी ऐसा मौक़ा आ ही जाता है जब उनको अपने जीवन से हाथ धोना ही पड़ता है, अर्थात् सूक्ष्म प्राणी उनका काम तमाम ही कर डालते हैं।

प्रश्न

१—छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों को देखकर हमारे हृदय में किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं ?

२—इस पाठ का सारांश एक पृष्ठ में प्रगट करो।

३—जीवन संग्राम से क्या मतलब समझते हो ? मानव जीवन-संग्राम का सूक्ष्म रूप में वर्णन करो।

४—छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा किस प्रकार करते हैं ?

५—इल्ली कैसा कीड़ा होता है, इसके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ?

६—अपने वाक्यों में प्रयोग करो—

पलायमान, हिंसक, धूर्तता, परिवर्तन, दृश्य,।

७—अन्तिम अनुच्छेद की क्रियाओं को चुनो और उनको दूसरे काल में परिवर्तित करो।

८—अर्थ बताकर वाक्यों में प्रयुक्त करो—

बेकाम कर देता है, टेढ़ा काम होता है, जीवन से हाथ धोते हैं।

२३—सत्कार्य की महत्ता

[लेखक—श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी]

[ये कानपुर ज़िले के रहने वाले हैं। पहले प्रयाग में रहते थे, किन्तु आज कल कानपुर में रहते हैं। ये हिन्दी-साहित्य के सुयोग्य विद्वान और लेखक हैं। इन्होंने हिंदी-साहित्य की सेवा ही में अपने जीवन का अधिक समय बिताया है। इन्होंने कई पत्रों का सम्पादन किया है तथा कई पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें गार्हस्थ्य शास्त्र और धर्म शिक्षा अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने इस लेख में सत्कार्य की महत्ता का वर्णन किया है। वर्णन शैली सरल और सजीव है।]

शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु अपने स्पर्श से सब को सुख और सन्तोष देता है, चन्द्र अपनी शीतल और आह्लाददायक किरणों से सबको सुख और आनन्द देता है, वृक्ष स्वयं धूप की तपन सहकर दूसरों को अपनी शीतल छाया से सुख और आनन्द देते हैं। इसी प्रकार परोपकारी पुरुष अपने सत्कार्यों से सबको सुख देता है, परन्तु जड़-सृष्टि के पदार्थों और चैतन्य-सृष्टि के जीवों में एक बड़ा भारी अन्तर है और वह यह है कि यद्यपि जड़-सृष्टि के पदार्थ और चैतन्य-सृष्टि के जीव, दोनों अपने सद्गुणों से दूसरों के लिये समान ही सुखदायक होते हैं, फिर भी जड़ सृष्टि के पदार्थों के सद्गुणों का स्वयं उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वृक्ष अपनी शीतल छाया से दूसरे का संताप दूर करके उसको सुख अवश्य देता है; परन्तु अपनी छाया से उसे स्वयं क्या लाभ होता है ? इसी भाँति सुगन्धयुक्त वायु का उसकी सुगन्ध से स्वयं उसको क्या लाभ पहुंचता है ? इसी प्रकार शीतल और

आह्लाद-कारक चन्द्रकिरणों से स्वयं चन्द्र को क्या लाभ पहुँचता है? कस्तूरी की खुशबू दूसरे को आनन्ददायक होती है? किन्तु कस्तूरी को इससे क्या? परन्तु चैतन्य-सम्पन्न जीवों की और उनमें भी विशेष कर विवेक-बुद्धि युक्तिमनुष्यों की यह दशा नहीं है। मनुष्य के परोपकारादि सत्कार्यों से दूसरों को तो सुख होता ही है, किन्तु उसके साथ ही परोपकार करने वाले मनुष्य को भी उससे संतोष होता रहता है। लूले-लँगड़े इत्यादि अनाथ और निराश्रित लोगों तथा ग़रीब विद्यार्थियों और इसी प्रकार नाना प्रकार के दुखों से पीड़ित पुरुषों की सहायता करने से इन लोगों को तो आराम पहुँचता ही है; किन्तु इन पर उपकार करनेवाले मनुष्य को एक प्रकार का विचित्र सुख प्राप्त होता है।

मानवी हृदय संस्कारशील है। वह मिट्टी के ढेले के समान निश्चेष्ट नहीं है। जिस प्रकार सूर्य-किरणों का प्रवेश शुद्ध स्वच्छ स्फटिक मणि में होता है, उसी प्रकार सत्कार्य का प्रभाव कर्त्ता के हृदय पर पड़ता है और उसका हृदय निर्मल होता जाता है; हृदय-पटल पर सब बुरे-भले कार्यों की छाप अबाधित रूप से पड़ती रहती है। सत्कार्यों के स्वच्छ प्रकाश से वह भी तेजस्वी होता जाता है और काले कर्मों से उसका तेज लुप्त होता है। और अन्त में वह पूर्ण अन्धकारमय हो जाता है। सब बुरे-भले कार्यों का हिसाब और जमा-खर्च मनुष्य के हृदय में बराबर अङ्कित होता जाता है। कोई होशियार मुनीम भी शायद किसी समय अपना कोई जमा-खर्च भूल सकता है; किन्तु हृदय सब भले-बुरे कर्मों का उल्लेख कभी चूक नहीं सकता। मानवी हृदय की रचना ही अपूर्व है! इस हृदय पर सब बुरे-भले कार्यों के संस्कार आप ही आप होते रहते हैं और उन्हीं बुरे-भले संस्कारों के अनुसार मनुष्य की उन्नति अथवा अवनति होती जाती है।

सत्कार्यों से मन को अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकार का सन्तोष प्राप्त होता है। उत्तम और सुगन्धित फूलों की सुगन्ध यदि बराबर लेते रहे तो अवश्य ही उसकी सुगन्ध का माधुर्य कम होता जायगा। सुन्दर गान यदि कभी-कभी हमको सुनने को मिलेगा, तब तो हमारी रुचि उस पर बनी रहेगी, किन्तु वही गायन का अलाप यदि बराबर हमारे कानों में टक्कर मारता रहेगा तो अवश्य ही फिर उसकी मधुरता जाती रहेगी। मतलब यह है कि आधिभौतिक सुख क्षणिक होते हैं। गीता में कहा है कि इन्द्रियों और उनके विषयों के संयोग से जो सुख होता है, वह पहले तो अमृत के समान सुखदायक मालूम होता है, परंतु अन्त में उससे दुःख ही होता है। ऐसा सुख राजस है। यह सात्विक नहीं है। अँगरेज़ी में भी इसी आशय की एक कहावत है अर्थात् इन्द्रिय-सुखों से अन्त में जी अवश्य उद्विग्न हो जाता है, परन्तु परोपकारजन्य परमार्थिक सुख का यह हाल नहीं है। वह सात्विक सुख है।

अपनी बुद्धि की प्रसन्नता से जो सुख होता है और जिसका संबंध इन्द्रिय सुख से नहीं है, किन्तु आत्मा से जिसका सम्बन्ध है, वही सात्विक सुख है। बुद्धि प्रसन्न क्योंकर होती है? आत्मा से किस सुख से संबंध है? सत्कार्यों से ही बुद्धि प्रसन्न होती है और उससे जो सुख मिलता है, वही पारमार्थिक अथवा आत्मिक सुख है। इस सुख से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता, इसके विषय में मनुष्य की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

इससे स्पष्ट है कि सत्कार्यों से मन को जब श्रेष्ठ प्रकार का सन्तोष मिलता है तब हृदय की क्षुद्र वृत्तियों की शक्ति धीरे धीरे क्षीण होती जाती है और सत्कार्यों की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। जिस प्रकार शरीर में रक्त-संचार की क्रिया यदि यथोचित रूप से जारी रहती है तो शरीर में शक्ति बनी रहती है

और इस कारण किसी प्रकार का रोग उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार सत्यकार्य से मन को उच्च श्रेणी का सन्तोष जब मिलता जाता है तब हृदय में तामस वृत्तियों का प्रादुर्भाव नहीं होने पाता।

चित्त की प्रसन्नता से सब दुखों का नाश होता है। यह बिलकुल ठीक है। मानवी हृदय का धर्म ही है कि सत्कार्यों से उत्पन्न होने वाले श्रेष्ठ आनन्द से हृदय को श्रेष्ठ वृत्तियों की उन्नति होती जाती है। परमेश्वर ने अपने अनक्य चातुर्य और दयालुता से मनुष्य को यह हृदयरूपी परमोत्तम धन दिया है। इसी हृदयरूपी धन के बल पर मनुष्य अपनी चाहे जितनी उन्नति कर सकता है। वेदान्त में कहा हो है कि मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। हृदय को उन्नत बनाकर मनुष्य परब्रह्म की पदवी तक पहुँच जाता है। सांसारिक व्यवहारों में भी कहा करते हैं कि "देखो भाई, यह मनुष्य नहीं, देवता ही है।" यह सब हृदय की उन्नति से हो सकता है।

कई लोगों का यह सिद्धान्त रहता है कि कहाँ का सत्कार्य और कहाँ का दुष्कार्य! "खाओ, पिओ सब सुख पाओ, कभी न लाओ मन में खेद।" जिस प्रकार के कर्मों से हमको आनन्द मिले, वही कर्म करो परन्तु ऐसे लोगों को सच्चा सन्तोष और शुद्ध आनन्द कभी मिल नहीं सकता। हाँ, उनको क्षणिक वासनाओं की तृप्ति अवश्य हो जायगी, परन्तु विषय वासनाओं की केवल तृप्ति ही तो सच्चा सुख नहीं है और फिर वासनाएँ भी स्थायी रूप से तृप्त नहीं होतीं। इनका तो यह हाल है कि इनको जैसे जैसे इन्द्रियों के विषय भोग मिलते जाते हैं, वैसे ही वैसे ये और भी अधिक बढ़ती जाती हैं। और उन वासनाओं की प्रज्वलित अग्नि में हृदय की उपकारी सद्वृत्तियों की आहुति पड़ती जाती है। अथवा यों कहिये कि सद्वृत्तियों के अंकुर उस जलती हुई विषयाग्नि की लपट से बिलकुल झुलस जाते हैं।

सत्कार्यों से जो श्रेष्ठ और शुद्ध आनन्द मिलता है, उसकी तुलना उच्च से उच्च विषयानन्द से भी नहीं की जा सकती। किसी मादक द्रव्य के सेवन से तात्कालिक शारीरिक और मानसिक बल अवश्य आ जाता है, परन्तु क्या यह बनावटी बल कभी भी उस बल की समता कर सकता है, जो कि मनुष्य को अपने उत्तम स्वास्थ्य से स्थायी रूप में प्राप्त होता है ? मादक द्रव्य के सेवन से जो जोश और उत्तेजना आती है, वह सच्ची नहीं है। उसके कारण अन्त में शरीर क्षीण और निर्बल हो जाता है। वात-विकार से भी कभी-कभी मनुष्य जोश से उछलने लगता है; किन्तु क्या वह सच्चा जोश कहा जा सकता है ? दुष्कार्य से हृदय की नीच वृत्तियाँ जब जागृत हो जाती हैं, तब उच्च वृत्तियों का लोप अवश्य ही हो जाता है। परमात्मा ने मानवी हृदय की रचना ही ऐसी की है कि उसमें एक ही काल में दो परस्पर विरुद्ध वृत्तियों का विकास नहीं हो सकता। जिस ज़मीन में कांटे हैं, उसमें उत्तम धान्य के बीज क्या कभी उग सकते हैं ? एक ही पदार्थ एक ही समय में ठंडा और गरम कैसे रह सकता है ? जिस प्रकार ऊसर ज़मीन में बीज नहीं जमता, उसी प्रकार दुष्ट मनोवृत्तियों से घिरे हुए हृदय में सद्वृत्तियों का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। सारांश यह है कि सत्कार्यों से होनेवाला आनन्द ही सच्चा आनन्द है और इसी आनन्द के द्वारा हृदय की सद्वृत्तियों का विकास होता है और उत्तरोत्तर सत्कार्य करने के लिये मनुष्य अधिकाधिक प्रवृत्त होता है। दुष्कार्यों से मन को सच्चा समाधान नहीं होता और दुष्कर्मों में प्रवृत्त करने वाली आसक्ति ही बढ़ती है; जैसे समुद्र के बलवान नक्रों के इधर-उधर संचार के कारण पानी की स्थिरता नष्ट हो जाती है और सर्वत्र क्षुब्धता पैदा हो जाती है, उसी प्रकार दुष्कार्यों से उत्पन्न होनेवाली दुष्ट वासना के कारण हृदय की शान्ति और स्थिरता बिलकुल

नष्ट हो जाती है और चञ्चलता तथा अनीति का साम्राज्य बढ़ता जाता है।

प्रश्न

१—सत्कार्य से क्या मतलब समझती हो? तुम सत्कार्य के अन्दर किन-किन कामों का परिगणित कर सकती हो?
२—संसार में सत्कार्य का अधिक महत्व क्यों है?
३—प्रकृति और परोपकारी मनुष्क के कार्यों की तुलना करो।
४—मानवी हृदय सत्कार्य से क्यों अधिक तेजवान बन जाता है?
५—सत्कार्य की महत्ता का वर्णन अपनी भाषा में करो।
६—इस लेख का सारांश एक पृष्ठ में प्रकट करो।
७—प्रथम अनुच्छेद का वाक्य-विश्लेषण करो।
८—भावार्थ समझाओ:—
मानवी हृदय..........पड़ती रहती है
९—पद व्याख्या करो—
वह सात्विक सुख है।

२४—पम्पियाई की अद्भुत सड़क

[ले०—श्री बनमाली प्रसाद शुक्ल]

[ये हिन्दी के सुलेखक और विद्वान हैं। इनके लेख हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होते रहते हैं। इनका यह लेख सरस्वती में प्रकाशित हुआ था। इसमें इन्होंने पम्पियाई की अद्भुत सड़क का वर्णन किया है लेख सुन्दर और भावपूर्ण है। इसकी भाषा भी सरल और स्पष्ट है।]

संसार में कहाँ की सड़क दर्शकों के सम्मुख आश्चर्य-जनक दृश्य उपस्थित करती है, इस प्रश्न के उत्तर में कोई बम्बई या कलकत्ता का नाम लेगा क्योंकि वहाँ की सड़क भिन्न-भिन्न देश के लोगों की ध्वनि से प्रतिध्वनित हुआ करती है, कोई दिल्ली की सड़क की चर्चा करेगा, जिसपर से भारतवर्ष के विजेता और शासकों की सवारी निकला करती थी। अमेरिका, यूरप आदि देशों में भ्रमण करने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त है, उनमें से कितने इंग्लिस्तान, पेरिस, न्यूयार्क या वेनिस की सड़क का स्मरण करेंगे और कितने रोम, केरो, मक्का या जेरूसलम की किसी सड़क को महत्त्व प्रदान करेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल लोग संसार के किसी न किसी बड़े नगर के मार्ग को ही अद्भुत दृश्यों से पूर्ण कहेंगे। कोई ऐसी सड़क का नाम नहीं लेगा, जहाँ न घोड़ों की टाप सुनाई पड़ती है, न मोटर ट्राम आदि गाड़ियाँ दौड़ती हुई नज़र आती हैं। जहाँ न कोई मनुष्य चलता फिरता है, पशु-पक्षी ही विचरते हैं। परन्तु एक सड़क जिसका वर्तमान और भविष्य अन्धकार मय है, बड़े-बड़े विद्वानों की दृष्टि में आश्चर्य जनक जँच रही है। उस सड़क का नाम पम्पियाई नगर की अद्भुत सड़क है। यह विसूवियस् के भीषण तथा नाशकारी कोप से कई शताब्दियों तक अँधेरे में अपना मुँह छिपाये हुए थी। परन्तु कुछ समय हुये उद्योगी और खोजी पुरुषों की कृपा से उसका ५०० गज़ लम्बा भाग प्रकाश में आ गया है। वहाँ लोगों को जैसा अनमोल और अद्भुत खज़ाना देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त वहाँ मानव-जीवन की असमर्थता और उसकी शक्ति की प्रबलता के जाज्वल्यमान अनेक उदाहरण भी लक्षित होते हैं।

इस सड़क के दोनों किनारों पर सुन्दर-सुन्दर अट्टालिकाओं

के विचित्र एवं मनोरंजक दृश्य कहीं-कहीं उत्तम दशा में और कहीं भग्नावस्था में स्थित हैं। प्रत्येक इमारत में जो दरवाज़े खिड़कियाँ और संगमरमर के स्तम्भ हैं, उनकी बनावट सुडौल और सजावट चित्ताकर्षक है। दीवालों पर चित्रकारी और चौक में खड़ी हुई तरह-तरह की मूर्तियाँ कला-कोविदों के मनन और दर्शकों के प्रमोद की सामग्री हैं, दूकानों की चीज़ ज्यों की त्यों तरतीबवार रखी हुई हैं। झाड़, फ़ानूस आदि शोभा की वस्तुएँ यथास्थान टँगी हुई हैं। प्रत्येक दूकान के सामने की दीवाल पर दूकान का नाम उभरे हुए अक्षरों में लिखा हुआ है। दूकान और चौक बाज़ार का भव्य दृश्य देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि ये शताब्दियों तक पृथ्वी की गोद में अपना मुँह छिपा कर दुख के आँसू बहाती रही होंगी। व्यवसायियों के तोलने-नापने की चीज़ें, हिसाब-किताब लिखने की उनकी सामग्रियाँ, आदि ज्यों की त्यों रखी हुई मिली हैं। शराब की दूकान की सजावट और वहाँ की वस्तुओं की सुव्यवस्था को देख कर दर्शक ने यही समझा, कि दूकान बिल्कुल नई है और हाल ही में खोली गई है। वहाँ जो शराब बनाने के यन्त्र तथा शराब रखने के बड़े-बड़े ताम्र-पात्र रखे हुये हैं वे बिल्कुल नवीन जान पड़ते हैं।

कहते हैं कि पम्पियाई नगर में शिक्षा और विलास दोनों की समान रूप से प्रधानता थी। वहाँ के मकान, दूकान, रंगशाला और कचहरी की इमारतों की सुन्दरता को वे इसका प्रमाण बताते हैं। पाश्चात्य देश के बड़े-बड़े आधुनिक नगरों में लोगों की स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त जो जो आयोजनाएँ प्रचलित हैं, वहाँ के प्रत्येक घर में उसी तरह के सामान, नल और फ़ौव्वारे लगे हैं और स्नानागार में ठंडा-गरम जल पहुँचाने की उत्तम व्यवस्था है। नगर का मैला पानी बहा ले जाने के लिए ज़मीन के भीतर ही भीतर नाली बनाई गई है। हर एक मकान के

सामने उद्यान का ध्वंसावशेष है और बीच में जल-घर बना हुआ है। जान पड़ता है कि दोपहर के समय विश्राम करने के लिये ये घर बनाये गये थे। मकान के कमरों की छत और फ़र्श अनोखी भिन्न-भिन्न आकृतियों से विभूषित है। पच्चीकारी का काम इस खूबी से किया गया है कि दर्शकों की बुद्धि चकरा जाती है। लोग उसे चतुर चितेरे की कुशलता समझ बैठते हैं, शिल्पकारी की नहीं। लकड़ी के सामान भी दर्शनीय हैं। उन पर हाथी दाँत और बहुमूल्य धातुओं की नक्क़ाशी की गई है, जो ललितकला कौशल के सुन्दर नमूने माने जाते हैं। उन सामानों से कमरों की शोभा और भी बढ़ गई है।

दीवालों पर नाना रूप-रंग के चित्र बने हैं, उनके भाव यूनान देश की प्राचीन-कहानियों से सम्बन्ध रखते हैं। कितने चित्रों की घटना होमर के रचित काव्य के कथा-आधार पर अवलम्बित है। ऐसे चित्रों के भाव बड़ी खूबी से दर्शाये गए हैं। जो उन्हें देखता है, उनकी आँखों के सामने प्राचीन यूनान का स्वर्गीय दृश्य झूलने लगता है। उस समय उन्हें ऐसा भास होने लगता है, मानो वे प्राचीन यूनान में भ्रमण करने वाले कोई यात्री हों और वहाँ की गुप्त प्रगट बातों को उनके आत्मीय जन के समान देख सुन रहे हों। होमर तथा उनके समकालीन प्रसिद्ध यूनानी कवियों की अप्राप्य कविता की साक्षात मूर्ति दीवालों पर अंकित देखकर एक सहृदय दर्शक ने यह निश्चय किया है कि उन चित्रों के निर्माता महाशय काव्य-मर्मज्ञ और कुशल चित्रकार ही होंगे और उनके पास ग्रीक काव्यों की हस्त-लिखित प्रति रही होगी

एक विनोद-गृह की दीवाल पर दो सौ गज लम्बी बेल बनी हुई है। उसमें इलियड और ओडेसी की कथा इतनी बारीकी से चित्रित है कि देखते ही बनता है। भाव की गम्भीरता और रंग

की सफ़ाई तथा चमक-दमक से उसकी शोभा और भी बढ़ गई है और सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ कर रही है। इन सब बातों से प्रकट होता है कि अपनी उन्नति काल में पम्पियाई कला-कौशल के विचार से खूब बढ़ा-चढ़ा नगर था।

टाउन हाल की बाहरी दिवाल पर मोटे अक्षरों में लिखे हुए कुछ विज्ञापन हैं, जो अब तक स्पष्ट और सुवाच्य हैं। उनमे से एक में मेम्बरों के उम्मीदवारोंके नाम और मतदाताओं से की गई उनकी युक्ति-पूर्ण प्रार्थना लिखी हुई है। जान पड़ता है कि नगर के नष्ट होने के समय वहां प्रतिनिधियों के चुनाव का बाजार गरम था। दूसरे में यह दरशाया गया है कि नेरो ने पम्पियाई की जनता से रुष्ट होकर उन्हें दस वर्ष तक मनुष्यों तथा पशुओं के द्वन्द्व युद्ध का जलसा करने की मनाही कर दी है। तीसरे में एक स्नानागार के उद्‌घाटन के उपलक्ष में होने वाले महोत्सव की चर्चा है। उसमें महोत्सव की सफलता के निमित्त बीस जोड़ी पहलवान और दस जोड़ीपशुओंके द्वन्द्व युद्ध का खर्चा देने वाले उदार महानुभावों का धन्यवाद-पूर्वक नाम लिखा गया है। सम्भव है कि दण्ड की अवधि नेरो की आज्ञा से घटा दी गई हो और लोगों को उपरोक्त महोत्सव कराने की अनुमति मिल गई हो।

पम्पियाई नगर, वहाँ के नागरिकों का जीवन, तथा वहाँ की कला और कौशल की जितनी जानकारी लोगों को इस समय है, उतनी उन्हें अपने नगर की प्राचीन स्थिति के सम्बन्ध मे सम्भवतः नहीं होगी। वहां की जड़ वस्तुएँ, नगर की समृद्धि की ललित-वार्ता और उसके नाश का लोमहर्षण तथा हृदय विदारक इतिहास स्पष्ट रूप से बता रहा है। वहां का एक-एक पत्थर हर्ष तथा विस्मय से मिला हुआ प्रभावशाली अभिनय दिखा रहा है। यह सब अभिनय देखने का सौभाग्य लोगों को

से प्राप्त हुआ. इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर देकर हम अपना लेख समाप्त करेंगे। दलोनी नामक एक प्रतिष्ठित विद्वान अपने मित्र के यहाँ किसी उत्सव में सम्मिलित होने के लिये जब जाने लगा, तब उन्होंने अपने भतीजे को साथ में चलने के लिये कहा। भतीजा किसी आवश्यक कार्य में लगा था, अतः वह न जा सका। विधि की वाम गति और काल की कुटिलता से दलोनी पम्पियाई नगर के साथ सदा के लिये सो गया, पर उसका भतीजा जीता रहा। इस दुर्घटना का रोमाँचकारी समाचार और दलोनी के आकस्मिक मृत्यु का विवरण उनके भतीजे ने तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्ति टेसिटस के पास उनके पूछने पर लिख भेजा। जब टेसिटस रोम में इतिहास लिख रहे थे, उस समय उन्हें दलोनी की मृत्यु-विषयक विस्तृत विवरण उल्लेख करने की आवश्यकता पड़ी। इसलिये उन्होंने दलोनी के भतीजे को अपने चचा की मृत्यु की घटना का वर्णन लिखने के लिये कई बार कहा, क्योंकि इस सम्बन्ध का जो पत्र उनके पास था, वह इतिहास की पुस्तक में लिखे जाने के लिये उचित नहीं था। टेसिटस का लिखा हुआ इतिहास जिसमें पम्पियाई के नाश होने की बातें लिखी थीं, बहुत दिनों से लुप्त हो गया है। केवल दलोनी के भतीजे की दो चिट्ठियाँ अब तक शेष हैं, जो पम्पियाई के दुर्भाग्य की कथा बता रही हैं। यदि वे दोनों पत्र प्राप्त न होते तो लोगों को पम्पियाई के अस्तित्व और नाश का कारण प्रकट न होता। प्रति दिन पम्पियाई की सड़क और उनके किनारे की इमारतें क्रमशः प्रकाश में आ रही हैं। आशा है कि उनसे मनुष्यों का पम्पियाई सम्बन्धी ज्ञानक्षेत्र और भी विस्तृत होता जायगा।

प्रश्न

१—संसार की सबसे विचित्र सड़क का नाम बताओ। तुम

उस सड़क के सम्बन्ध में क्या जानते हो ?

२—पम्पियाई की सड़क का सूक्ष्म रूप से वर्णन करो।

३—पम्पियाई नगर के सौन्दर्य के सम्बन्ध में तुम क जानते हो ?

४—पम्पियाई नगर का इतिहास क्योंकर हमारी आंखों सामने आ सका ?

५—पम्पियाई नगर को सड़क का क्यों उतना अधिक मह है ? क्या उसमें संसार का अन्यान्य सड़कों से क विशेष बात है ?

६—भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करके भावार्थ लिखो· जीवन, जन, नाना, कुशल ।

७—पद व्याख्या करो—

सड़क की चर्चा करेगा ।

८—इस पाठ में आने वाले उर्दू शब्दों के स्थान पर हि शब्द लिखो ।